GEPS-01

राजनीति विज्ञान एक परिचय

(An Introduction of Political Theory)

राजनीति विज्ञान विभाग

समाज विज्ञान विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

Hello Haldwani

हैलो हल्द्वानी

91.2 FM

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

तीनपानी बाईपास मार्ग

ट्रांसपोर्ट नगर के पीछे, हल्द्वानी 263139

नैनीताल, उत्तराखण्ड

Email: info@uou.ac.in; Website: http://uou.ac.in

पाठयक्रम समिति

प्रो. गिरिजा प्रसाद पाण्डे **निदेशक – समाज विज्ञान विद्या शाखा,**उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी नैनीताल	**प्रो0 एम0एम0 सेमवाल** राजनीति विज्ञान विभाग केन्द्रीय विश्वविद्यालय,गढवाल
प्रो0 दुर्गाकान्त चौधरी राजनीति विज्ञान विभाग श्रीदेव सुमन विश्वविद्यालय ऋषिकेश परिसर, ऋषिकेश	**प्रो0 सतीश कुमार** राजनीति विज्ञान विभाग इन्दिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
डॉ0 सूर्य भान सिंह **(विशेष आमंत्रित सदस्य)** एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान इलाहबाद विश्वविद्यालय	**डॉ घनश्याम जोशी** असिस्टेंट प्रोफेसर लोक प्रशासन उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल
डॉ लता जोशी असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल	**आरूशी** असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन एव सम्पादन

आरूशी असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल	**डॉ0 सूर्य भान सिंह** एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान इलाहबाद विश्वविद्यालय

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
आरूशी ,असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान **,**उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल	**1-4**
डॉ लता जोशी ,असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी	**5,6,9**
अशोक कुमार,पूर्व संविदा शिक्षक **,** राजनीति विज्ञान ,उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल	**6,8**
डॉ सन्तोष कुमार सिंह, राजनीति विज्ञान प्रवक्ता ,चौरी बेलहा महाविद्यालय तरवा आजमगढ़	7

आई.एस.बी.एन. ----------

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष -2023

Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी, नैनीताल 263139

Printed at :----------

संस्करण :2023, सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन की प्रति।

सर्वाधिकार सुरक्षित | इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए विना मिमियोग्रफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है

मुद्रित प्रतियां

अनुक्रम

राजनीति विज्ञान का परिचय	जी.ई.पी.एस-01 , पृष्ठ संख्या
इकाई 1. राजनीतिक सिद्धांत एक परिचय	1-13
इकाई 2. स्वतंत्रता	14-24
इकाई 3. समानता	25-36
इकाई 4. न्याय	37-47
इकाई 5. कानून	48-59
इकाई 6. अधिकार	60-69
इकाई 7. संप्रभुता	70-84
इकाई 8. शक्ति	85-93
इकाई 9. लोकतंत्र	94-104

GEPS- 01

राजनीति विज्ञान एक परिचय

An Introduction of Political Science

समाज विज्ञान विद्या शाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी ,263139

इकाई 1 - राजनीतिक सिद्धान्त का परिचय

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 राजनीतिक सिद्धांत: अर्थ, परिभाषा
1.3 राजनीतिक सिद्धांत और अन्य परस्पर सम्बंधित शब्द
1.4 राजनीतिक सिद्धांत की विशेषताएं
1.5 राजनीतिक सिद्धांत का कार्यक्षेत्र
1.6 राजनीतिक सिद्धांत के महत्व
1.7 राजनीतिक सिद्धांत के विभिन्न दृष्टिकोण
1.7.1 ऐतिहासिक दृष्टिकोण
1.7.2 मानक दृष्टिकोण
1.7.3 अनुभवजन्य दृष्टिकोण
1.8 सारांश
1.9 शब्दावली
1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावनाः

राजनीति ने सदा ही सामाजिक जीवन में निर्णायक भूमिका निभाई है। वर्तमान समय में यह भूमिका लगातार बढ़ती ही जा रही है। वैचारिक स्तर पर भी राजनीति का हमेशा पूर्व और पश्चिम में खास स्थान रहा है। प्राचीन यूनानी 'नगर-राज्यों' का अध्ययन करने वाला विषय 'राजनीति', आधुनिक युग में राष्ट्रीय राज्यों के जन्म लेने से अध्ययन क्षेत्र की दृष्टि से बदला है, फलतः इसे अब तक अनेक नामों जैसे- राजनीति, राजनीति दर्शन, राजनीतिक सिद्धान्त, राजनीति विज्ञान आदि की संज्ञा दी जा चुकी है। वर्तमान में हमारे लिए इन नामों के अर्थ तथा इनका अन्तर समझना आवश्यक हैं।

1.1 उद्देश्य

राजनीति विज्ञान के लम्बे इतिहास में अनेक नाम और स्वीकार किए गये है। अतः इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः-

1. राजनीतिक सिद्धांत के अर्थ और परिभाषा को समझ पाएंगे।
2. राजनीतिक सिद्धान्त की विशेषताओं को समझ पाएंगे।
3. राजनीतिक सिद्धांत के महत्व को जान पाएंगे।
4. राजनीति विज्ञान, राजनीतिक दर्शन और राजनीतिक सिद्धांत के अंतर को जान सकेंगे।

1.2 राजनीतिक सिद्धान्त: अर्थ, परिभाषा (Political Theory: Meaning, Definitions)

राजनीतिक सिद्धान्त के अर्थ को समझने के लिए 'राजनीतिक' और 'सिद्धान्त' इस दोनों ही शब्दों को अलग अलग समझने की आवश्यकता है। पहले 'सिद्धान्त' शब्द को समझने का प्रयास करेंगे। सिद्धान्त को अंग्रेजी में (Theory) थ्योरी कहते है जो कि एक ग्रीक शब्द है जिसका संबंध अन्य दो शब्दों (i) थ्यूरिया (Theoria) (ii) थ्योरमा (Theorema) से है। (i) थ्यूरिया, का अर्थ है जो हमारे आस पास घटित हो रहा है उसे समझने की क्रिया अथवा प्रक्रिया; इसे 'सैद्धांतिकरण' (Theorizing) कहा जाता है तथा (ii) थ्योरमा, जिसका अर्थ है वह निष्कर्ष जो इस 'सैद्धांतिकरण' की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप निकलते हैं। इन दोनों शब्दों की विशिष्टता यह है कि ये सैद्धांतिकरण प्रक्रिया (Activity of Theorizing) तथा इस प्रक्रिया से निकलने वाले निष्कर्षों (Outcome of the activity) में अंतर करती है। शब्द सैद्धांतिकरण का संबंध किसी घटना को समझने का प्रयत्न है। इसका अभिप्राय किसी परिणाम अथवा निष्कर्ष को सिद्ध करना अथवा उसे वैध ठहरना नहीं है।

दूसरा शब्द 'राजनीतिक' भी ग्रीक भाषा से संबन्धित शब्द 'पोलिस' से निकला है जिसका अर्थ है नगर-राज्य अर्थात किसी भी समुदाय के अच्छे जीवन से संबन्धित सभी पक्षों के लिए निर्णय लेने की सामूहिक शक्ति। अपने आधुनिक

रूप में 'राजनीतिक' शब्द राज्य तथा इससे संबन्धित संस्थाओं जैसे सरकार, विधानमंडल अथवा सार्वजनिक नीति का प्रतिनिधित्व करता है।

राजनीतिक सिद्धांत उन मौलिक विचारों, अवधारणाओं और सिद्धांतों का बौद्धिक अन्वेषण है जो समाज के संगठन, कामकाज और शासन को आकार देते हैं। यह एक अकादमिक अनुशासन है जो राजनीति, सत्ता और अधिकार की जटिल गतिशीलता को समझने और उसका विश्लेषण करने का प्रयास करता है, जिसका उद्देश्य सरकार की प्रकृति, नागरिकों के अधिकारों, जिम्मेदारियों, संसाधनों और अवसरों के उचित और न्यायसंगत वितरण में अंतर्दृष्टि प्रदान करना है।

अपने मूल में, राजनीतिक सिद्धांत गहन महत्व के प्रश्नों पर प्रकाश डालता है, जैसे कि राजनीतिक प्राधिकरण की उत्पत्ति, व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा में राज्य की भूमिका, और एक समुदाय के भीतर न्याय और समानता की खोज। आलोचनात्मक अध्ययन के माध्यम से, राजनीतिक सिद्धांतकार उन अंतर्निहित दार्शनिक नींव को उजागर करने का प्रयास करते हैं जो राजनीतिक प्रणालियों और संस्थानों को रेखांकित करते हैं, जो मानवीय मामलों के पाठ्यक्रम को प्रभावित करते हैं।

राजनीतिक सिद्धांत की उत्पत्ति प्राचीन सभ्यताओं में देखी जा सकती है, जहां प्लेटो, अरस्तू और कन्फ्यूशियस जैसे विचारकों ने शासन, नैतिकता और आदर्श राज्य की प्रकृति पर विचार किया था। पूरे इतिहास में, मैकियावेली के "द प्रिंस", थॉमस हॉब्स के "लेवियाथन" और जॉन लॉक के "टू ट्रीटीज़ ऑफ़ गवर्नमेंट" जैसे मौलिक कार्यों ने सामाजिक अनुबंध, मानव स्वभाव और शासकों और शासितों के बीच संबंधों के बारे में हमारी समझ को आकार दिया है।

समकालीन समय में, वैश्वीकरण, तकनीकी प्रगति और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के लगातार बदलते परिदृश्य के कारण आने वाली नई चुनौतियों को अपनाते हुए, राजनीतिक सिद्धांत विकसित हो रहा है। राजनीतिक सिद्धांतकार मानवाधिकार और सामाजिक न्याय से लेकर पर्यावरणीय नैतिकता और समाज पर राजनीतिक विचारधाराओं के प्रभाव तक के विषयों पर चर्चा करते हैं।

विभिन्न विद्वानों ने राजनीतिक सिद्धान्त की विभिन्न परिभाषाएँ दी। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

एंड्रयू हेकर (Andrew Hacker) के अनुसार, " राजनीतिक सिद्धान्त में 'तथ्य' (Fact) और मूल्य (Values) दोनों समाहित हैं। वे एक दूसरे के पूरक हैं। दूसरे शब्द में हर सिद्धान्त शास्त्री एक वैज्ञानिक और 'दार्शनिक' है, दोनों की भूमिका निभाता है। (Every political theoriest worthy of the name plays double role.. He is part scientist and part philosopher and he will divide his time between the two pursuits according to his own temperament and interests.)

जेर्मिनो (Germino) के अनुसार, " राजनीतिक सिद्धान्त मानवीय सामाजिक अस्तित्व की उचित व्यवस्था के सिद्धांतों का आलोचनात्मक अध्ययन है"। (Political Theory is the critical study of the principles of right order in human social existence.)

जॉर्ज सेबाइन (George Sabine) के अनुसार "व्यापक तौर पर राजनीतिक सिद्धांत से अभिप्राय उन सभी बातों से है जो कि राजनीति से संबन्धित या प्रासंगिक है और संकीर्ण दृष्टि में इसका अर्थ राजनीतिक समस्याओं की विधिवत छानबीन से है। (Broadly political theory means 'as anything about poitics or relevant to politics' and narrowly as the disciplined investigation of political problems.)

1.3 राजनीतिक सिद्धांत और अन्य परस्पर संबंधित शब्द

राजनीतिक अध्ययन से संबंधित शब्द, अर्थात् राजनीति विज्ञान, राजनीतिक दर्शन, राजनीतिक विचारधारा और राजनीतिक सिद्धांत, अक्सर आपस में मिलते हैं, फिर भी वे अलग-अलग अर्थ रखते हैं। उनके बीच का चित्रण आधुनिक वैज्ञानिक सोच से प्रभावित विकसित दृष्टिकोण से उत्पन्न होता है।
राजनीति विज्ञान राजनीतिक घटनाओं का व्यापक अन्वेषण है, जिसमें राजनीतिक विचारों, सिद्धांतों, विचारधाराओं और राजनीतिक प्रणालियों के कामकाज का अध्ययन शामिल है। यह राजनीतिक गतिशीलता को समझने के लिए अनुभवजन्य तरीकों और विश्लेषण का उपयोग करते हुए राजनीति और राजनीतिक व्यवहार के बारे में प्रशंसनीय सामान्यीकरण और कानून स्थापित करना चाहता है।

हालाँकि, राजनीतिक सिद्धांत इस अनुभवजन्य दृष्टिकोण से परे है। यह दार्शनिक या नैतिक दृष्टिकोण से राजनीतिक घटनाओं, प्रक्रियाओं और संस्थानों पर विचार करता है। सर्वोत्तम राजनीतिक व्यवस्था जैसे प्रश्नों में उलझते हुए, यह एक व्यापक जांच तक विस्तारित होता है: जीवन का आदर्श तरीका जिसे व्यक्तियों को एक सामूहिक समाज के भीतर जीना चाहिए। तात्कालिक मुद्दों को संबोधित करते हुए, राजनीतिक सिद्धांत समवर्ती रूप से कालातीत दुविधाओं से निपटता है, जैसा कि शास्त्रीय ग्रंथों पर निर्भरता से पता चलता है।

राजनीतिक सिद्धांत से अलग, राजनीतिक दर्शन न्याय, 'है' और 'चाहिए' के बीच अंतर और व्यापक राजनीतिक चिंताओं के बारे में पूछताछ के सामान्य उत्तर प्रदान करता है। यह अवधारणाओं के बीच अंतर्संबंध स्थापित करता है, जिससे मानक राजनीतिक सिद्धांत का एक अभिन्न पहलू बनता है। यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक राजनीतिक दार्शनिक एक सिद्धांतवादी है, हालाँकि प्रत्येक सिद्धांतकार एक दार्शनिक नहीं है।

दूसरी ओर, राजनीतिक विचारधारा एक सर्वव्यापी सिद्धांत बनना चाहती है जो मानव स्वभाव और समाज का एक सार्वभौमिक सिद्धांत प्रस्तुत करता है। व्यवस्थित हठधर्मिता में निहित, यह अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एक विस्तृत रोडमैप निर्धारित करता है। मार्क्सवाद और उदारवाद जैसे उदाहरण सामाजिक प्रतिमानों को आकार देने में राजनीतिक विचारधाराओं के दायरे को रेखांकित करते हैं। राजनीतिक विचार का क्षेत्र सिद्धांत के एकल क्षेत्र से परे

फैला हुआ है। इसमें एक समुदाय के सामूहिक चिंतन, लेखन, भाषण और नीतियों को शामिल किया गया है। समयबद्ध होते हुए भी, राजनीतिक विचार एक युग के लोकाचार को स्पष्ट करता है।

राजनीतिक सिद्धांत, व्याख्या के मॉडल और ग्रंथों की विशेषता, राज्य, कानून और प्रतिनिधित्व जैसी संस्थाओं के विशिष्ट विश्लेषणों में गहराई से उतरता है। इसका तुलनात्मक और व्याख्यात्मक दृष्टिकोण विशिष्ट संदर्भों में राजनीतिक व्यवहार से समझने और सामान्यीकरण करने का प्रयास करता है। राजनीतिक दर्शन राजनीतिक सिद्धांतों के बीच टकराव को हल करने के लिए कदम उठाता है, और दी गई परिस्थितियों में प्रतिस्पर्धी विचारों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करता है।

इसके अलावा, प्लेटो की अंतर्दृष्टि के समान, जर्मिनो भी मत और ज्ञान के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर को समझता है, जो एक राजनीतिक सिद्धांतकार के प्रयासों की नींव के रूप में कार्य करता है। यह परिप्रेक्ष्य इस बात को रेखांकित करता है कि प्रत्येक राजनीतिक सिद्धांतकार दोहरी पहचान से संपन्न है - एक वैज्ञानिक और एक दार्शनिक की। इन भूमिकाओं का आवंटन सिद्धांतकार के स्वभाव और झुकाव पर निर्भर है। इन भूमिकाओं के संलयन के माध्यम से एक सिद्धांतकार ज्ञान के क्षेत्र में सार्थक योगदान दे सकता है। किसी सिद्धांत का वैज्ञानिक पहलू तब सुसंगतता और महत्व प्राप्त करता है जब लेखक के पास राजनीतिक अस्तित्व में निहित उद्देश्यों की पूर्वकल्पित धारणा होती है। यह अंतर्निहित ढांचा उन रूपरेखाओं को चित्रित करता है जिनके भीतर वैज्ञानिक विश्लेषण सामने आता है। समानांतर में, दार्शनिक आधार उस तरीके से स्पष्ट हो जाता है जिस तरह से सिद्धांतकार वास्तविकता और इसकी जटिलताओं को चित्रित करता है।

संक्षेप में, वैज्ञानिक और दार्शनिक आयामों के बीच यह परस्पर क्रिया एक राजनीतिक सिद्धांतकार के काम के केंद्र में है। एक वैज्ञानिक और दार्शनिक दोनों के रूप में सिद्धांतकार की भूमिका उनके विश्लेषणों को गहराई और अंतर्दृष्टि से भर देती है, जिससे उन्हें राजनीतिक अवधारणाओं और विचारधाराओं की जटिल गतिशीलता पर प्रकाश डालने की अनुमति मिलती है।

1.4 राजनीतिक सिद्धांतों की विशेषताएँ (Characteristics of Political Theory)

राजनीतिक सिद्धांत राजनीति विज्ञान के भीतर एक अनुशासन है जो राजनीतिक प्रणालियों और व्यवहार को रेखांकित करने वाले सिद्धांतों, अवधारणाओं और विचारों को समझने और उनका विश्लेषण करने का प्रयास करता है। इसमें विभिन्न राजनीतिक विचारों, विचारधाराओं और दर्शन का व्यवस्थित अध्ययन और परीक्षण शामिल है। यहाँ राजनीतिक सिद्धांत की कुछ प्रमुख विशेषताएँ दी गई हैं:

मानक प्रकृति (Normative Nature) : राजनीतिक सिद्धांत अपने दृष्टिकोण में मानक है, जिसका अर्थ है कि यह मूल्य, नैतिकता और राजनीतिक प्रणालियों को आदर्श रूप से कैसे कार्य करना चाहिए, के प्रश्नों से संबंधित है। इसका

उद्देश्य न्याय, समानता, स्वतंत्रता और अन्य नैतिक सिद्धांतों को बढ़ावा देने वाली सरकार और नीतियों के सर्वोत्तम रूपों का मूल्यांकन और निर्धारण करना है।

वैचारिक विश्लेषण(Conceptual Analysis): राजनीतिक सिद्धांत में शक्ति, अधिकार, वैधता, न्याय, स्वतंत्रता, लोकतंत्र और अधिकारों जैसी मुख्य राजनीतिक अवधारणाओं का गहन अन्वेषण शामिल है। लक्ष्य राजनीतिक घटनाओं के बारे में हमारी समझ को बढ़ाने के लिए इन अवधारणाओं को स्पष्ट और परिष्कृत करना है।

ऐतिहासिक और दार्शनिक जड़ें (Historical and Philosophical Roots): राजनीतिक सिद्धांत अक्सर ऐतिहासिक और दार्शनिक स्रोतों पर आधारित होता है, जिसमें प्लेटो, अरस्तू, मैकियावेली, हॉब्स, लोके, रूसो और कई अन्य जैसे शास्त्रीय राजनीतिक दार्शनिकों के काम शामिल हैं। इसमें समकालीन राजनीतिक विचारक भी शामिल हैं।

वैचारिक परीक्षण (Ideological Examination): राजनीतिक सिद्धांत विभिन्न विचारधाराओं की जांच करता है, जैसे उदारवाद, रूढ़िवाद, समाजवाद, नारीवाद और अन्य। यह उनकी उत्पत्ति, अंतर्निहित धारणाओं और राजनीतिक अभ्यास के लिए निहितार्थ का विश्लेषण करता है।

आलोचनात्मक विश्लेषण (Critical Analysis): राजनीतिक सिद्धांतकार आलोचनात्मक सोच और विश्लेषण में संलग्न होते हैं, मौजूदा राजनीतिक संस्थानों, प्रथाओं और सामाजिक मानदंडों पर सवाल उठाते हैं। उनका उद्देश्य राजनीतिक प्रणालियों के भीतर संभावित पूर्वाग्रहों, विरोधाभासों और छिपी शक्ति संरचनाओं को उजागर करना है।

सार और सैद्धांतिक: राजनीतिक सिद्धांत अनुभवजन्य डेटा के बजाय अमूर्त और सैद्धांतिक विचारों से संबंधित है। यह राजनीतिक घटनाओं को समझने के लिए सामान्य सिद्धांत और रूपरेखा स्थापित करना चाहता है।

अंतःविषय दृष्टिकोण: राजनीतिक सिद्धांत अक्सर अपने विश्लेषण को समृद्ध करने के लिए दर्शन, इतिहास, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और अन्य क्षेत्रों से अंतर्दृष्टि प्राप्त करते हुए एक अंतःविषय दृष्टिकोण अपनाता है।

1.5 राजनीतिक सिद्धान्त का कार्यक्षेत्र:

राजनीति का क्षेत्र उतना ही व्यापक है जितनी की मनुष्य की गतिविधियां। जीवन का कोई भी क्षेत्र या पहलू ऐसा नहीं जो राजनीति से अछूता हो । उदारवादियों ने राजनीति का रिश्ता केवल सरकार और नागरिकों तक ही सीमित रखा जबकि मार्क्सवादियों ने उत्पादन के साधनों पर भी सरकार का ही स्वामित्व माना है। नारीवादी पारिवारिक और घरेलू मामलों में भी राजी के हस्तक्षेप की वकालत करते हैं। इस आधार पर देखा जा सकता है कि राजनीति विज्ञान का

कार्यक्षेत्र काफी व्यापक है। निम्नलिखित विषयों को राजनीतिक सिद्धान्त के कार्यक्षेत्र में सम्मिलित किया जा सकता है:

1. **राज्य का अध्ययन:** प्राचीन कल से ही राज्य की उत्पति, प्रकृति तथा कार्यक्षेत्र पर विचार होता रहा है। राज्य की उत्पत्ति कैसे हुई? उसका विकास कैसे हुआ? राज्य की नगर-राज्य से लेकर वर्तमान की राष्ट्रीय राज्य तक की विकास यात्रा किस प्रकार रही? राज्य से संबन्धित बुनियादी सवालों का इसके अंतर्गत अध्ययन किया जाता है। इससे संबन्धित विद्वान राज्य की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धान्त जैसे कि दैवीय उत्पत्ति के सिद्धान्त, सामाजिक समझौता सिद्धान्त, भौतिकवादी सिद्धान्त का विश्लेषण करते हैं।
2. **सरकार का अध्ययन:** राजनीतिक सिद्धांत राज्य के भीतर सरकारों के कामकाज और संरचना का अध्ययन करता है। इसमें शक्तियों के पृथक्करण, सरकार की विभिन्न शाखाओं (कार्यकारी, विधायी और न्यायपालिका) की भूमिका और निर्णय लेने और नीति कार्यान्वयन के तंत्र की जांच करना शामिल है। राजनीतिक सिद्धांतकार शासन की अवधारणा और शासकों और नागरिकों के बीच संबंधों का भी विश्लेषण करते हैं।
3. **शक्ति का अध्ययन:** वर्तमान में शक्ति कि अवधारणा का अध्ययन राजनीतिक सिद्धान्त का महत्वपूर्ण विषय बन चुका है। यह विश्लेषण करता है कि राजनीतिक अभिनेताओं और संस्थानों द्वारा सत्ता कैसे अर्जित की जाती है?कैसे वैध बनाई जाती है? और उसका प्रयोग कैसे किया जाता है। सत्ता और उसके स्रोतों की अवधारणा राजनीतिक सिद्धांत में एक केंद्रीय विषय है, क्योंकि यह निर्धारित करती है कि शासन करने और बाध्यकारी निर्णय लेने का अधिकार किसके पास है।
4. **मानवीय व्यवहार का अध्ययन:** राजनीतिक सिद्धांत मानता है कि राजनीति मूलतः मानवीय व्यवहार और अंतःक्रियाओं से संचालित होती है। इस प्रकार, यह पता लगाता है कि व्यक्ति और समूह राजनीतिक संदर्भों में कैसे व्यवहार करते हैं, वे कैसे राय बनाते हैं, निर्णय लेते हैं और राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेते हैं। मानव व्यवहार को समझने से राजनीतिक सिद्धांतकारों को मतदान पैटर्न, जनता की राय और राजनीतिक आंदोलनों और सामाजिक परिवर्तन की गतिशीलता का विश्लेषण करने में मदद मिलती है।
5. **नीति निर्माण प्रक्रिया का अध्ययन:** राजनीतिक सिद्धांत नीति-निर्माण की प्रक्रिया की जांच करता है, जिसमें सरकारी नीतियों का निर्माण, कार्यान्वयन और मूल्यांकन शामिल है। यह समझने का प्रयास करता है कि नीतियां कैसे विकसित की जाती हैं, नीतिगत निर्णयों को प्रभावित करने वाले कारक और समाज पर नीतियों का प्रभाव क्या है। राजनीतिक सिद्धांतकार विभिन्न नीति दृष्टिकोणों की प्रभावशीलता का आकलन कर सकते हैं और सार्वजनिक नीतियों के मूल्यांकन और सुधार के लिए मानक ढांचे की पेशकश कर सकते हैं।

6. **अंतराष्ट्रीय सम्बन्धों का अध्ययन :** राजनीतिक सिद्धांत अपना दायरा अंतरराष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन तक बढ़ाता है, जो राष्ट्र-राज्यों, गैर-राज्य अभिनेताओं और अंतरराष्ट्रीय संगठनों के बीच बातचीत की जांच करता है। राजनीतिक सिद्धांतकार कूटनीति, युद्ध और शांति, वैश्विक शासन, अंतर्राष्ट्रीय कानून और देशों के बीच शक्ति और प्रभाव की गतिशीलता जैसे विषयों का विश्लेषण करते हैं। वे अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली की प्रकृति और वैश्विक क्षेत्र में राज्यों की भूमिका पर विभिन्न सिद्धांतों और दृष्टिकोणों का पता लगाते हैं।
7. **क्षेत्रीय सहयोग संगठनों का अध्ययन :** राजनीतिक सिद्धांत में क्षेत्रीय सहयोग संगठनों का अध्ययन शामिल है, जो सहयोग को बढ़ावा देने और आम चुनौतियों का समाधान करने के लिए एक विशेष भौगोलिक क्षेत्र के देशों द्वारा गठित संस्थान हैं। इन संगठनों के राजनीतिक, आर्थिक, सुरक्षा या सामाजिक उद्देश्य हो सकते हैं। राजनीतिक सिद्धांतकार क्षेत्रीय और वैश्विक मामलों पर उनके गठन, कामकाज और प्रभाव के साथ-साथ क्षेत्रीय गतिशीलता को आकार देने में उनकी भूमिका की जांच करते हैं।
8. **नारीवाद का अध्ययन:** राजनीतिक सिद्धांत के दायरे में, नारीवाद अध्ययन का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। नारीवादी राजनीतिक सिद्धांत राजनीति और समाज में लिंग की भूमिका की आलोचनात्मक जांच करता है। यह विश्लेषण करता है कि लिंग कैसे सत्ता संरचनाओं, राजनीतिक भागीदारी और नीति परिणामों को आकार देता है। नारीवादी राजनीतिक सिद्धांतकार लैंगिक समानता और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लक्ष्य के साथ लिंग आधारित असमानताओं, भेदभाव और पितृसत्ता को समझने और चुनौती देने का प्रयास करते हैं।

1.6 राजनीतिक सिद्धान्त के महत्व

1. ज्ञान का सरलीकरण: सिद्धान्त ज्ञान का सरलीकरण है। इससे किसी भी विषय को समझने में आसानी होती है। सिद्धान्त प्रतिमान स्थापित करके विभिन्न तथ्यों को प्रतीक में बादल देता है। विभिन्न तथ्यों और घटनाओं को प्रतीक बनाकर परिभाषित करना सिद्धान्त की महत्ता है।

2. नए शोध उपकरण खोजना: सिद्धान्त की सहायता से नए प्रयोग व आविष्कार के लिए नए शोध उपकरण खोजता है। वह सिद्धान्त उतना ही ज्यादा उपयोगी सिद्ध होगा जो नए सिद्धान्त खोजने की क्षमता रखता है।

3. अन्वेषकों के लिए लाभदायक: डेविड ईस्टन का विचार है कि राजनीतिक सिद्धान्त अन्वेषन के लिए विशेषकर लाभदायक है। डेविड ईस्टन ने यह विचार प्रकट किया है कि "यदि सैद्धांतिक रूपरेखा पहले विद्धमान होगी तो विभिन्न प्रकार के तथ्यों को क्रमबद्ध करना और सामान्यीकरण निश्चित करने का कार्य सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

4. स्वायत्त अनुशासन के रूप में प्रतिष्ठित करना: राजनीति विज्ञान को एक स्वायत्त अनुशासन के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए "राजनीतिक सिद्धान्त" अपरिहार्य है। इसी पर इस विषय में एकीकरण, सामंजस्य,पूर्वकथनीयता एवं वैज्ञानिकता लाना तथा अन्य शोध संभावनाएँ निर्भर हैं।

5. शासन प्रणाली एवं शासकों को औचित्यपूर्णता प्रदान करना: शासन प्रणाली एवं शासकों के कार्यों को औचित्यपूर्णता प्रदान करने में सिद्धान्त एक उपकरण कि भूमिका अदा करता है।

1.7 राजनीतिक सिद्धांत के विभिन्न दृष्टिकोण

राजनीतिक सिद्धांत की विभिन्न दृष्टिकोणों को पहचानने और वर्गीकृत करने का कार्य काफी जटिल है , मुख्य रूप से सिद्धांतकारों के ऐसे अभ्यास में संलग्न होने की प्रवृत्ति के कारण जिसमें विविध अवधारणाओं और परंपराओं से प्रेरणा लेना शामिल है। यह प्रवृत्ति पहले के समय की तुलना में समकालीन राजनीतिक सिद्धांत में विशेष रूप से स्पष्ट है। ऐतिहासिक रूप से, सिद्धांतकार अक्सर एक विशिष्ट ढांचे का अधिक बारीकी से पालन करते थे और अपने सैद्धांतिक निर्माणों में अवधारणा की एक निश्चित शुद्धता बनाए रखते थे। हालाँकि, यह दृष्टिकोण आधुनिक समय में उतनी मजबूती से कायम नहीं है, जहाँ ढेर सारे सिद्धांत मिश्रित गुणों वाले प्रतीत होते हैं।

फिर भी, इस जटिलता के बावजूद, राजनीतिक सिद्धांत के क्षेत्र में तीन अलग-अलग अवधारणाओं का एक व्यापक वर्गीकरण उभरता है। ये अवधारणाएँ नींव के रूप में कार्य करती हैं जिन पर ऐतिहासिक और समकालीन दोनों सिद्धांतों को समझा और मूल्यांकित किया जा सकता है। ये तीन मूलभूत अवधारणाएँ हैं: ऐतिहासिक, मानक और अनुभवजन्य।

1.7.1 ऐतिहासिक दृष्टिकोण:

कई सिद्धांतकारों ने ऐतिहासिक संदर्भों से अंतर्दृष्टि और संसाधन प्राप्त करके राजनीतिक सिद्धांतों का निर्माण करने का प्रयास शुरू किया है। ऐतिहासिक अवधारणा के प्रमुख समर्थकों में से एक सेबाइन हैं, जो इस बात पर जोर देते हैं कि राजनीतिक सिद्धांत की प्रकृति का वर्णनात्मक तरीके से पता लगाया जा सकता है। यह परिप्रेक्ष्य इस बात पर केंद्रित है कि सिद्धांत ने ऐतिहासिक घटनाओं और विशिष्ट स्थितियों पर कैसे प्रतिक्रिया दी है। अनिवार्य रूप से, राजनीतिक सिद्धांत एक स्थिति-निर्भर चरित्र मानता है, जहां प्रत्येक ऐतिहासिक संदर्भ अलग-अलग चुनौतियां प्रस्तुत करता है जिन्हें सिद्धांत का उद्देश्य तैयार किए गए समाधानों से संबोधित करना है। यह दृष्टिकोण परंपरा को सम्मान देता है, अतीत द्वारा दिए गए मार्गदर्शन को पहचानता है।

कोब्बन भी राजनीतिक सिद्धांत के मुद्दों पर विचार करने के पारंपरिक तरीके में इतिहास की एक मजबूत समझ को शामिल करने के महत्व पर जोर देते हैं। यह दृष्टिकोण मूल्यवान पाठों पर विश्वास करता है, हमें हमारी मौलिकता के बारे में विनम्रता सिखाता है और हमें विचार के वैकल्पिक तरीकों का पता लगाने के लिए प्रेरित करता है। यह पिछली पीढ़ियों की कमियों के बारे में जानकारी हासिल करने और उन्हें वर्तमान के सामूहिक ज्ञान में पिरोने, कल्पनाशील सोच को बढ़ावा देने के लिए ऐतिहासिक स्रोतों के दोहन के महत्व को भी रेखांकित करता है।

इसके अलावा, ऐतिहासिक अवधारणा हमारे मानक परिप्रेक्ष्य को आकार देने में महत्वपूर्ण योगदान देती है। विचारों का इतिहास इस बात पर प्रकाश डालता है कि कैसे हमारे सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य को पिछली घटनाओं ने

आकार दिया है, इस प्रकार हमारे मूल्यों, मानदंडों और नैतिक अपेक्षाओं को प्रभावित किया है। इस समझ से लैस होकर, हम इन मूल्यों की जांच कर सकते हैं और उनका आलोचनात्मक मूल्यांकन कर सकते हैं। हालाँकि, इस दृष्टिकोण का अंधानुकरण नुकसान से रहित नहीं है। प्रत्येक विशिष्ट स्थिति की विशिष्टता नई चुनौतियाँ पेश करती है, जिससे अतीत के कुछ पहलू अप्रासंगिक हो जाते हैं। ऐतिहासिक विचारों के प्रति अनालोचनात्मक लगाव प्रगति में बाधा बन सकता है।

राजनीतिक सिद्धांत में ऐतिहासिक दृष्टिकोण की उपयोगिता विवाद का विषय है। हालाँकि यह विचारोत्तेजक मूल्य और अंतर्दृष्टि प्रदान करता है, एक निश्चित बिंदु से परे इसकी प्रयोज्यता संदिग्ध हो जाती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह बीते युगों की पुरानी धारणाओं में उलझ सकता है। ऐतिहासिक विचारों के स्थायी मूल्य कायम हैं, लेकिन उनकी सैद्धांतिक प्रभावशीलता काफी कम हो गई है।

1.7.2. मानक दृष्टिकोण

राजनीतिक सिद्धांत में मानक दृष्टिकोण, जिसे अक्सर दार्शनिक या नैतिक सिद्धांत के रूप में जाना जाता है, इस विश्वास में निहित है कि दुनिया और इसकी घटनाओं को तर्क, उद्देश्य और वांछित परिणामों के माध्यम से समझा जा सकता है। यह परिप्रेक्ष्य मूल्यों के बारे में दार्शनिक रूप से अनुमान लगाने के लिए सिद्धांतकार के अंतर्ज्ञान, तर्क, अंतर्दृष्टि और अनुभवों पर निर्भर करता है। मानक सिद्धांतकार राजनीतिक संस्थानों के लक्ष्य, सामाजिक संगठनों के साथ व्यक्तिगत संबंधों की प्रकृति और एक आदर्श समाज को संचालित करने वाले सिद्धांतों जैसे सवालों का जवाब देना चाहते हैं। उनका ध्यान नैतिक विचारों पर है, जिसका लक्ष्य कल्पनाशील सोच के माध्यम से एक आदर्श मॉडल या यूटोपिया का निर्माण करना है। जबकि मानक सिद्धांतकार राजनीतिक दर्शन से आकर्षित होते हैं, उन्हें समय, स्थान और व्यक्तिगत दृष्टिकोण से प्रभावित नैतिक मूल्यों की सापेक्ष और व्यक्तिपरक प्रकृति की अनदेखी करते हुए, अपने पोषित मूल्यों को सार्वभौमिक और निरपेक्ष के रूप में चित्रित करने के लिए आलोचना का सामना करना पड़ता है। आदर्शवाद के कुछ आलोचक मूल्यों की सापेक्षता, नैतिकता के सांस्कृतिक आधार, उद्यम के वैचारिक पहलू और उनकी परियोजनाओं के अक्सर अमूर्त और यूटोपियन चरित्र पर जोर देते हैं। इन आलोचनाओं के बावजूद, मानक सिद्धांत ने ऐतिहासिक रूप से अपने सिद्धांतों को समय की वास्तविकताओं से जोड़ने का प्रयास किया है। हाल के दिनों में, जॉन रॉल्स जैसे विचारकों ने, "ए थ्योरी ऑफ जस्टिस" जैसे कार्यों के माध्यम से, अनुभवजन्य टिप्पणियों के साथ मानक दार्शनिक तर्कों को जोड़ने का प्रयास किया है, एक कल्पनाशील निर्माण के माध्यम से वितरणात्मक न्याय और कल्याणकारी राज्य की अवधारणाओं को वास्तविक दुनिया की चिंताओं से जोड़ा है।

1.7.3 अनुभवजन्य दृष्टिकोण

20वीं शताब्दी में, अनुभवजन्य राजनीतिक सिद्धांत ने मानकवाद पर प्राथमिकता ली, जिससे क्षेत्र में एक नई दिशा को आकार मिला। अनुभवजन्य राजनीतिक सिद्धांत व्यक्तिपरक मूल्य निर्णयों के बजाय वास्तविक टिप्पणियों से सिद्धांतों को प्राप्त करने पर आधारित है। परिणामस्वरूप, मानक राजनीतिक सिद्धांत, जो राय और प्राथमिकताओं पर निर्भर

करता है, तथ्यात्मक आधार की कमी के कारण बदनाम कर दिया गया। मूल्य-मुक्त सिद्धांत की ओर इस बदलाव का उद्देश्य राजनीतिक सिद्धांत को एक वैज्ञानिक और वस्तुनिष्ठ अनुशासन में बदलना, व्यावहारिक कार्रवाई के लिए एक मार्गदर्शक के रूप में इसकी विश्वसनीयता को बढ़ाना है। यह दृष्टिकोण सकारात्मकवाद के रूप में जाना जाने लगा।

प्रत्यक्षवाद के प्रभाव में, राजनीतिक सिद्धांतकारों ने उन सिद्धांतों के माध्यम से राजनीतिक घटनाओं के बारे में वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करने का लक्ष्य अपनाया, जिन्हें अनुभवजन्य रूप से सत्यापित किया जा सकता है। इससे समाज का एक प्राकृतिक विज्ञान बनाने की महत्वाकांक्षा को जन्म दिया गया, जिसमें दर्शन को एक अधीनस्थ भूमिका में धकेल दिया गया। सैद्धांतिक भूमिका को प्रतिबद्धताओं और मूल्यों से मुक्त एक अलग पर्यवेक्षक के रूप में चित्रित किया गया था।

अनुभवजन्य राजनीतिक सिद्धांत ज्ञान के अनुभववादी सिद्धांत पर आधारित था, जिसमें सत्य को झूठ से अलग करने के मानदंड के रूप में प्रयोग और सत्यापन सिद्धांत पर जोर दिया गया था। इस संदर्भ में, 1950 के दशक में "व्यवहारिक क्रांति" उभरी, जिसने कई महत्वपूर्ण परिवर्तनों की वकालत की:

क) विश्लेषण के लिए मात्रात्मक तकनीकों पर जोर।

ख) सांख्यिकीय परीक्षणों के लिए उत्तरदायी अनुभवजन्य अनुसंधान के पक्ष में मानक ढांचे की अस्वीकृति।

ग) विचारों के इतिहास की उपेक्षा।

घ) सूक्ष्म अध्ययनों पर ध्यान केंद्रित करें जो अनुभवजन्य जांच के लिए अनुकूल हों।

ई) क्षेत्र के भीतर विशेषज्ञता को महत्व देना।

च) व्यक्तिगत व्यवहार से डेटा एकत्र करना।

छ) मूल्य-मुक्त अनुसंधान के लिए प्रयास करना।

इस व्यवहारिक क्रांति ने पारंपरिक सिद्धांत की आलोचना का माहौल तैयार किया, इसे विचारधारा, अमूर्तता, तत्वमीमांसा और यूटोपियन सोच से जोड़ा। कुछ ने सिद्धांत को पूरी तरह से त्यागने का भी सुझाव दिया। वस्तुनिष्ठ ज्ञान की खोज में, विचार और वास्तविकता के बीच का अंतर धुंधला हो गया।

अभ्यास प्रश्न

1.गिलक्राइस्ट के शब्दों में कहा जा सकता है कि, "विवेक तथा प्रचलन के दृष्टिकोण से राजनीति विज्ञान ही सर्वाधिक उचित नाम है। सत्य/असत्य

2.अरस्तू ने 'पालिटिक्स' को मास्टर साइंस कहा। सत्य/असत्य

3. अनुभवजन्य राजनीतिक सिद्धांत का मुख्य लक्ष्य क्या है?

(अ) सार्वभौमिक मानदंडों की स्थापना (ब) दर्शन को गौण भूमिका में धकेलना

(स) मूल्य-मुक्त अनुसंधान का संचालन करना (द) यूटोपियन सोच को बढ़ावा देना

4. वैज्ञानिक ज्ञान को परिभाषित करने के लिए कार्ल पॉपर ने कौन सा सिद्धांत प्रस्तुत किया?

(अ) अनुभववाद (ब) यूटोपियनवाद (स) मिथ्याकरण (द) सकारात्मकता

5. राजनीतिक सिद्धांत में वस्तुनिष्ठ और वैज्ञानिक ज्ञान की खोज से कौन सा शब्द जुड़ा है?

(अ) दार्शनिक पूछताछ (ब) मानकवाद (स) तत्वमीमांसा (द) अनुभववाद

1.8 सारांशः

राजनीतिक सिद्धांत बौद्धिक अन्वेषण के एक स्तंभ के रूप में खड़ा है जो राजनीति, शासन और सामाजिक संगठन की जटिलताओं का समाधान करता है। यह मौलिक अवधारणाओं, विचारधाराओं और नैतिक सिद्धांतों पर प्रकाश डालता है, जो राजनीतिक क्षेत्र के भीतर शक्ति, अधिकार, न्याय और मानव व्यवहार की प्रकृति में अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। एक अंतःविषय क्षेत्र के रूप में, राजनीतिक सिद्धांत दर्शन, इतिहास, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और अन्य विषयों से प्रेरणा लेता है, जिससे इसका दायरा और गहराई समृद्ध होती है।

राजनीतिक सिद्धांत का महत्व मानक मार्गदर्शन प्रदान करने, आलोचनात्मक सोच को प्रेरित करने और समाज के पाठ्यक्रम को आकार देने की क्षमता में निहित है। यह अमूर्त विचारों और व्यावहारिक अनुप्रयोगों के बीच एक पुल के रूप में कार्य करता है, राजनीतिक घटनाओं को समझने और नीतिगत निर्णयों को सूचित करने के लिए वैचारिक उपकरण प्रदान करता है। वैकल्पिक राजनीतिक व्यवस्थाओं का प्रस्ताव करके और नैतिक मानदंडों के विरुद्ध मौजूदा प्रणालियों का मूल्यांकन करके, राजनीतिक सिद्धांत एक अधिक न्यायपूर्ण और न्यायसंगत दुनिया की खोज को बढ़ावा देता है।

1.9 शब्दावली

प्राधिकार - किसी विशेष संदर्भ में शासन करने या निर्णय लेने की वैध शक्ति, न्याय- संसाधनों और दण्ड के वितरण में निष्पक्षता, स्वतंत्रता - दमनकारी प्रतिबंधों या नियंत्रण से मुक्ति।

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. स 4. स 5. द

1.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. जैन, पुखराज- राजनीति विज्ञान, एस0बी0पी0जी0 पब्लिकेशन, आगरा
2. सिंहल, एस0सी0- राजनीतिक सिद्धान्त, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा
3. आर्शीवादम, ए0डी0 तथा मिश्र, कृष्णकान्त- राजनीति विज्ञान, एस0 चॉद कम्पनी लि0, नई दिल्ली
4. गाबा, ओमप्रकाश- राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा, मयूर पेपर बैक्स, नोयडा
5. जौहरी, जे0सी0 एवं सीमा- आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त, स्टर्लिग पब्लिकेशन प्रा0 लि0, नई दिल्ली
6. वर्मा, एस0पी0- मार्डन पालिटिकल थ्योरी, विकास प्रकाशन, नई दिल्ली
7. दास, पी0जी0- मार्डन पालिटिकल थ्योरी,न्यू सेंण्ट्रल बुक एजेंसी,कलकत्ता

1.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

8. जैन, एम0पी0- पालिटिकल थ्योरी, आर्थस गिल्ड पब्लिकेशन, दिल्ली
9. संधु, ज्ञान सिंह- राजनीतिक सिद्धान्त, दिल्ली विश्वविधालय
10. वर्मा, एस0एल0-एडवांसड मार्डन पालिटिकल थ्योरी, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली.

1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राजनीतिक सिद्धांत को परिभाषित करते हुए इसकी विशेषताओं की समीक्षा कीजिये।।
2. राजनीतिक सिद्धान्त के महत्व का वर्णन कीजिये।
3. राजनीतिक सिद्धान्त के कार्यक्षेत्र की विवेचना कीजिये।

इकाई 2 स्वतन्त्रता

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 स्वतंत्रता: अर्थ, परिभाषा

2.3 स्वतंत्रता का नकारात्मक दृष्टिकोण

2.4 स्वतंत्रता का सकारात्मक दृष्टिकोण

2.5 स्वतंत्रता पर समकालीन बहस

2.6 स्वतंत्रता के विविध रूप

2.7 सारांश

2.8 शब्दावली

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना:

स्वतंत्रता, जिसे अक्सर आज़ादी कहा जाता है, राजनीतिक दर्शन और सामाजिक विमर्श में एक मौलिक अवधारणा है। इसमें व्यक्तिगत स्वायत्तता और बाहरी ताकतों द्वारा जबरदस्ती या उत्पीड़न की अनुपस्थिति का विचार शामिल है। स्वतंत्रता व्यक्तियों को सरकार, समाज या अन्य संस्थाओं के अनुचित हस्तक्षेप के बिना विकल्प चुनने, अपने लक्ष्यों का पीछा करने और अपनी मान्यताओं को व्यक्त करने का अधिकार देती है।

स्वतंत्रता की अवधारणा पूरे इतिहास में लोकतांत्रिक समाजों और मानवाधिकार आंदोलनों की आधारशिला रही है। इसे मानवीय गरिमा और एक न्यायपूर्ण एवं न्यायसंगत समाज की नींव का एक अनिवार्य पहलू माना जाता है। स्वतंत्रता के विभिन्न रूप, जैसे राजनीतिक स्वतंत्रता (सरकार में भाग लेने और निर्णय लेने में अपनी बात रखने का अधिकार), आर्थिक स्वतंत्रता (अत्यधिक नियमों के बिना व्यापार और वाणिज्य में संलग्न होने की स्वतंत्रता), और नागरिक स्वतंत्रता (व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर अनुचित सरकारी हस्तक्षेप के खिलाफ सुरक्षा), मानव अधिकारों और व्यक्तिगत कल्याण की सुरक्षा के लिए केंद्रीय हैं।

2.1 उद्देश्य

1. स्वतंत्रता के अर्थ और परिभाषा को जान पायेंगें।

2. स्वतंत्रता के विविध रूपों को समझ पायेंगें।

3. स्वतंत्रता के दृष्टिकोण सकारात्मक और नकारात्मक स्वतंत्रता को जान पायेंगें।

2.2 स्वतंत्रता: अर्थ, परिभाषा

स्वतन्त्रता का अंग्रेजी रूपान्तर 'लिबर्टी' लैटिन भाषा के 'लिबर' शब्द से निकला है जिसका अर्थ होता है 'बन्धनों का अभाव'। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज में रहते हुए मनुष्य असीमित स्वतन्त्रता का उपभोग कर ही नहीं सकता। उसे सामाजिक नियमो की मर्यादा के अन्तर्गत रहना होता है। अतः राजनीति विज्ञान के अन्तर्गत स्वतन्त्रता की जिस रूप में कल्पना की जाती है, उस रूप में स्वतन्त्रता मानवीय प्रकृति और सामाजिक जीवन के इन दो विरोधी तत्वों (बन्धनों व अभाव और नियमों के पालन) में सामंजस्य का नाम है। और इनकी परिभाषा करते हुए कहा जा सकता है कि ''स्वतन्त्रता व्यक्ति की अपनी इच्छानुसार कार्य करने की शक्ति का नाम है बशर्ते कि इनसे दूसरे व्यक्ति की इसी प्रकार की स्वतन्त्रता में कोई बाधा न पहुँचे।

शीले के अनुसार - ''स्वतन्त्रता अति शासन की विरोधी है''

प्रो0 लास्की के शब्दों में, ''स्वतन्त्रता मेरा अभिप्राय यह है कि उन सामाजिक परिस्थितियों के अस्तित्व पर प्रतिबन्ध न हो, जो आधुनिक सभ्यता में मनुश्य के सुख के लिए नितान्त आवश्यक है।

गैटल ने कहा है, ''स्वतन्त्रता का समाज में केवल नकारात्मक स्वरूप ही नहीं है, वरन् सकारात्मक स्वरूप भी है। स्वतन्त्रता के सकारात्मक या वास्तविक स्वरूप की नकारात्मक स्वरूप ही नहीं, वरन् सकारात्मक स्वरूप भी है।" स्वतन्त्रता के सकारात्मक या वास्तविक स्वरूप की नकारात्मक स्वरूप से भिन्नता बताते हुए टी0एस0 ग्रीन ने लिखा है कि ''जिस प्रकार सौन्यर्य कुरूपता के अभाव का नाम ही नहीं होता, उसी प्रकार स्वतन्त्रता प्रतिबन्धों के अभाव का नाम नहीं है। आगे चलकर ग्रीन ही स्वन्त्रता के सकारात्मक रूप को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि ''स्वतन्त्रता ऐसे कार्य करने और उपयोग करने की शक्ति कानाम जो करने योग्य या उपभोग के के योग्य हो।"

अतः स्वतन्त्रता की परिभाषा करते हुए कहा जा सकता है कि ''स्वतन्त्रता जीवन की ऐसी अवस्था का नाम है जिसमें व्यक्ति के जीवन पर न्यूनतम प्रतिबन्ध हों और व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास हेतु अधिकतम सुविधाऐं प्राप्त हो।"

2.3 स्वतन्त्रता का नकारात्मक दृष्टिकोण

स्वतंत्रता की नकारात्मक धारणा का सूत्रपात उन्नीसवीं शताब्दी के उदारवादी दर्शन के साथ हुआ। नकारात्मक स्वतंत्रता मुख्यतः दो पूर्व मान्यताओं पर आधारित है: (1) हर व्यक्ति बेहतर तरीके से अपना हित जानता है। यह सूत्र इस मान्यता पर टिका है कि वह एक विवेकशील प्राणी है। (2) राज्य की भूमिका बहुत ही सीमित है। व्यक्ति अपना सर्वश्रेष्ठ निर्णायक है और राज्य व्यक्ति के लक्ष्यों और उद्देश्यों के बारे में फैसला नहीं कर सकता।

उदारवादी विचारकों के अनुसार नकारात्मक स्वतंत्रता बाहरी बाधाओं या हस्तक्षेप की अनुपस्थिति है। दूसरे शब्दों में, किसी व्यक्ति को तब नकारात्मक रूप से मुक्त माना जाता है जब कोई बाहरी बाधाएं, प्रतिबंध या दबाव उसे वह करने से नहीं रोकता जो वह चाहता है। नकारात्मक स्वतंत्रता गैर-हस्तक्षेप पर जोर देती है, और यह अक्सर सीमित सरकार के विचार और व्यक्तिगत अधिकारों की सुरक्षा से जुड़ी होती है। नकारात्मक स्वतंत्र के समर्थक प्राकृतिक दशा में विश्वास रखते हैं जिसमें व्यक्ति को असीमित प्राकृतिक स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त है. लॉक के अनुसार " सामाजिक समझौते के उपरान्त राज्य की उत्पत्ति का उद्देश्य मनुष्यों के प्राकृतिक अधिकारों का संरक्षण करना है।

इस विचार के समर्थक जॉन लॉक, डेविड ह्यूम, आदम स्मिथ, थॉमस पेन, हर्बर्ट स्पेंसर, बेन्थम, ज़े.एस.मिल थे. 20 वीं शताब्दी में इसयाह बर्लिन, मिल्टन फ्रीडमैन, हेयक, नौजिक आदि रहे हैं।

स्वतंत्रता की धारणा को नकारात्मक स्वतंत्रता और सकारात्मक स्वतंत्रता में वर्गीकरण का श्रेय इसयाह बर्लिन को जाता है। बर्लिन ने 1958 में अपनी प्रसिद्ध एवं विख्यात पुस्तक "Two Concepts on Liberty" प्रकाशित की।

उन्होंने 1969 में इस पुस्तक का संशोधन किया और इस पुस्तक को "Four Essays on Liberty" के नाम से प्रकाशित किया।

स्वतन्त्रता के नकारात्मक दृष्टिकोण का सबसे अधिक प्रमुख रूप में प्रतिपादन **जे0एस0 मिल** के द्वारा 1859 ई0 में प्रकाशित अपने निबन्ध 'स्वतन्त्रता' में किया गया है। मिल का कथन है कि व्यक्ति का उद्देश्य अपने व्यक्तित्व का उच्चतम एवं अधिकतम विकास है और यह विकास केवल स्वतन्त्रता के वातावरण में ही सम्भव है। यदि व्यक्ति को यह स्वाधीनता न दी जाए तो मानव जीवन का मूल लक्ष्य ही विफल हो जाएगा। समाज की उन्नति और विकास के लिए भी व्यक्ति को अधिकतम स्वाधीनता देना आवश्यक है। इस प्रकार मिल के अनुसार, "व्यक्ति के जीवन में राज्य का न्यूनतम हस्तक्षेप और अधिकतम सम्भव सीमा तक व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार जीवन व्यतीत करने की छूट ही स्वतन्त्रता है और वह इस अपनाने पर बल देता है"। मिल व्यक्ति-स्वत़ता की प्रबलतम समर्थक है।

मिल व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के दो पहलुओं पर बल देता है- विचार स्वन्त्रता और कार्य स्वतन्त्रता।

मिल के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को विचार और अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए तथा राज्य के द्वारा किसी भी प्रकार की विचारधारा या भावभिव्याप्ति पर बन्धन नहीं लगाया जाना चाहिए।

कार्य स्वतन्त्रता के विषय में, मिल मानव कार्यो को दो भागों में विभाजित करता है - (1) स्व-विषयक (2) पर-विषयक। स्व-विषयक अर्थात व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित (2) पर-विषयक अर्थात ऐसे कार्य, जिनका प्रभाव समाज के अन्य व्यक्तियों के जीवन पर पड़ता है।

मिल का कथन है कि स्व-विषयक कार्यो में व्यक्ति को पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त होनी चाहिए, लेकिन पर-विषयक कार्यो में व्यक्ति की स्वतन्त्रता सीमित होती है, विशेषकर जबकि उसके कार्यो से समाज के अन्य व्यक्ति की स्वतन्त्रता में बाधा पहुंचती हो।

मिल व्यक्ति के जीवन पर 'न्यूनतम प्रतिबन्धों की स्थिति' को स्वतन्त्रता का नाम देते हुए स्वतन्त्रता के नकारात्मक दृष्टिकोण का प्रतिपादन करता है। आज की परिस्थितियों में मिल की इस स्वतन्त्रता को वास्तविक स्वतन्त्रता नहीं कहा जा सकता है।

फ्रेडरिक हेयक नकारात्मक स्वतंत्रता के समर्थक रहे हैं। हेयक के अनुसार कोई भी व्यक्ति तभी स्वतंत्र है जब वह किसी और व्यक्ति की मनमानी इच्छा के दमन के अधीन नहीं है।

2.4 स्वतंत्रता का सकारात्मक दृष्टिकोण

सकारात्मक स्वतंत्रता, स्वयं को नियंत्रित करने और अपने तर्कसंगत हितों के अनुरूप कार्य करने में सक्षम होने का विचार शामिल है। यह बाहरी बाधाओं की अनुपस्थिति से परे है और व्यक्ति की जिम्मेदार विकल्प चुनने और अपने

जीवन का स्वामी बनने की क्षमता पर जोर देता है। जबकि नकारात्मक स्वतंत्रता बाहरी हस्तक्षेप से मुक्त होने के बारे में है, सकारात्मक स्वतंत्रता स्व-निर्देशित, सार्थक और तर्कसंगत जीवन जीने के लिए स्वतंत्र होने के बारे में है। नकारात्मक स्वतंत्रता के समर्थक उन विशिष्ट क्षेत्रों की सुरक्षा पर ध्यान केंद्रित करते हैं जहां कोई व्यक्ति स्वतंत्र रूप से कार्य कर सकता है, सकारात्मक स्वतंत्रता के समर्थकों का लक्ष्य अधिक महत्वाकांक्षी है: उनका लक्ष्य स्व-निर्धारित कार्रवाई के दायरे को उसकी पूर्ण सीमा तक विस्तारित करना है। वे दो अलग-अलग दृष्टिकोणों के माध्यम से इस उद्देश्य को आगे बढ़ाते हैं।

सबसे पहले, सकारात्मक स्वतंत्रता के समर्थक आंतरिक प्रतिबंधों को कार्रवाई में बाधा मानते हैं। उदाहरण के लिए, रूसो का मानना था कि इच्छाओं या जुनून के आगे झुकना स्वतंत्रता के विपरीत है। उनके अनुसार, इच्छाएँ अक्सर पर्यावरण और पालन-पोषण जैसे बाहरी कारकों से प्रभावित होती हैं। रूसो के अनुसार, सच्ची स्वतंत्रता सचेतन और तर्कसंगत रूप से उन इच्छाओं को पूरा करने का चयन करने में निहित है जो वास्तव में किसी के स्वयं को प्रतिबिंबित करती हैं, न कि केवल भूख के आगे झुकना। कांत ने एक समान दृष्टिकोण साझा किया, जिसमें कहा गया कि वास्तविक स्वतंत्रता में तर्कसंगत सिद्धांतों के आधार पर इच्छाओं का चयन करना शामिल है जिनका किसी ने समर्थन किया है।

दूसरे, सकारात्मक स्वतंत्रता के समर्थक लोकतांत्रिक निर्णय लेने वाले तंत्र के माध्यम से स्व-निर्धारित कार्रवाई का विस्तार करना चाहते हैं। केवल व्यक्तिगत जीवन पर कानूनों के प्रभाव को कम करने पर ध्यान केंद्रित करने के विपरीत, सकारात्मक स्वतंत्रता लोकतांत्रिक भागीदारी द्वारा परिभाषित स्व-निर्मित कानूनों के तहत रहने पर जोर देती है। रूसो की लोकतंत्र की वकालत इस दृष्टिकोण का उदाहरण देती है, जिसमें कहा गया है कि सच्ची स्वतंत्रता के लिए कार्यों को नियंत्रित करने वाले नियमों को आकार देने में अपनी बात कहने की आवश्यकता होती है। रूसो के लिए, नागरिक स्वतंत्रता में सामूहिक कानून में भाग लेना शामिल है जो सामान्य हित के साथ संरेखित होता है, जिससे व्यक्तियों को अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण रखने की अनुमति मिलती है। वां। ग्रीन ने सकारात्मक स्वतंत्रता का भी समर्थन किया, इसे एक सकारात्मक शक्ति या दूसरों के साथ साझा की गई क्षमता के रूप में परिभाषित किया, जो व्यक्तियों को कुछ सार्थक करने या आनंद लेने और खुद को सर्वश्रेष्ठ बनाने में सक्षम बनाता है।

दोनों जे.एस. मिल और टी.एच. ग्रीन ने व्यक्तियों को उनकी क्षमता तक पहुंचने में सक्षम बनाने में स्वतंत्रता के मूल्य को पहचाना, फिर भी वे इसकी परिभाषा पर असहमत थे। इससे एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है: व्यक्तिगत स्वतंत्रता क्यों आवश्यक है, और इसके मूल्य पर आम सहमति अलग-अलग व्याख्याओं को क्यों जन्म देती है? स्वतंत्रता को परिभाषित करने में यह विचलन अवधारणा की सूक्ष्म और बहुआयामी प्रकृति को रेखांकित करता है, जो व्यक्तिगत एजेंसी, सामाजिक भागीदारी और एक सार्थक और पूर्ण जीवन की खोज के बीच जटिल परस्पर क्रिया को दर्शाता है।

सकारात्मक स्वतंत्रता की अवधारणा में बुनियादी विचार यह है कि हर व्यक्ति के आत्मभाग के दो भाग होते है-उच्चतर आत्म और निम्नतर आत्म। व्यक्ति का उच्चतर आत्म उसका तार्किक आत्म होता है और व्यक्ति के निम्नतर आत्म पर

उसका प्रभुत्व होना चाहिए। सकारात्मक स्वतंत्रता का अर्थ सिर्फ यह नहीं है कि किसी तरह की दखलंदाजी न हो बल्कि इसमें यह विचार भी शामिल है कि व्यक्ति अपना मालिक हो और उसके उच्चतर आत्म का निम्नतर आत्म पर प्रभुत्व हो।

इस अवधारणा के समर्थक टी.एच.ग्रीन, बोसांके, हौबहाउस,लिंडसे, बार्कर, लास्की, मैकाइवर आदि थे।

मैक्फर्सन ने अपनी पुस्तक Democratic Theory में सकारात्मक स्वतंत्रता का समर्थन किया है। मैक्फर्सन के अनुसार सकारात्मक स्वतंत्रता मानव के पूर्ण रूप में कार्य करने की स्वतंत्रता है। किसी व्यक्ति की सकारात्मक स्वतंत्रता वास्तव में विकासशील अर्थ में व्यक्ति की शक्ति है। मैक्फर्सन के अनुसार मनुष्य की विकासात्मक शक्ति का अधिकतम विस्तार ही उसकी "सृजनात्मक स्वतंत्रता की कुंजी है"।

स्वतंत्रता की दो प्रचलित धारणाओं की सीमाओं को चुनौती देते हुए, समकालीन स्वतंत्रता सिद्धांतकार स्वतंत्रता के लिए आवश्यक सामाजिक पूर्वापेक्षाओं के निर्माण से जूझ रहे हैं। ये पूर्वापेक्षाएँ भौतिक और कानूनी प्रतिबंधों से कुछ डोमेन की पारंपरिक सुरक्षा के साथ-साथ व्यक्तियों को शिक्षा, आय और स्वास्थ्य देखभाल जैसे संसाधनों के न्यायसंगत प्रावधान से भी आगे जाती हैं। इन पहलुओं के साथ-साथ, दो अतिरिक्त प्रावधानों को स्वतंत्रता के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है, हालांकि वे कम सर्वसम्मत सहमति प्राप्त करते हैं।

स्वतंत्रता की तीसरी सामाजिक स्थिति किसी व्यक्ति के समाज के भीतर उसके सांस्कृतिक संदर्भ की मान्यता और मूल्यांकन के इर्द-गिर्द घूमती है। यह सांस्कृतिक पृष्ठभूमि स्वायत्त प्राथमिकताओं के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सांस्कृतिक संदर्भ पर यह जोर सांस्कृतिक अधिकारों की वकालत के महत्व को रेखांकित करता है, जिसका अर्थ है कि यदि किसी समाज के भीतर विविध संस्कृतियों को समान रूप से सम्मान नहीं दिया जाता है तो सच्ची स्वतंत्रता से समझौता किया जाता है। संक्षेप में, यह स्थिति यह तर्क देती है कि विभिन्न संस्कृतियों का असमान मूल्यांकन उस समाज के भीतर व्यक्तियों की समग्र स्वतंत्रता को कम कर देता है।

स्वतंत्रता की चौथी सामाजिक स्थिति सामूहिक स्वतंत्रता की अवधारणा पर केंद्रित है, जो सार्वभौमिक मताधिकार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जैसी मात्र राजनीतिक स्वतंत्रता से परे फैली हुई है। यह स्थिति उस चिंता को संबोधित करती है जो तब उत्पन्न होती है जब स्वतंत्रता को कुछ व्यक्तियों द्वारा दूसरों पर हावी होने की क्षमता के रूप में देखा जाता है। इस आपत्ति का प्रतिकार करने के लिए, उन तर्कों का पता लगाना आवश्यक हो जाता है जो एक व्यक्ति की स्वतंत्रता और दूसरों की स्वतंत्रता के बीच पारस्परिक संबंध स्थापित करते हैं। दूसरे शब्दों में, सच्ची स्वतंत्रता में यह मान्यता शामिल है कि प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता दूसरों की स्वतंत्रता से जुड़ी हुई है और उस पर निर्भर है।

2.5 स्वतंत्रता पर समकालीन बहस

नकारात्मक और सकारात्मक स्वतंत्रता के आसपास के पारंपरिक विमर्श से आगे बढ़ते हुए, हम इस बात पर गौर करते हैं कि नारीवाद स्वतंत्रता की अवधारणा से कैसे जूझ रहा है। स्वतंत्रता की धारणा, ऐतिहासिक रूप से, महिलाओं की चेतना में अपनी उत्पत्ति पाती है, विशेष रूप से प्राचीन ग्रीस में स्पष्ट है। ग्रीस में राज्य गठन के शुरुआती चरणों के दौरान, महिलाएं, जो सबसे पहले गुलाम थीं, स्वतंत्रता की एक अलग धारणा रखती थीं। यह धारणा, जिसे "व्यक्तिगत स्वतंत्रता" कहा जाता है, नकारात्मक स्वतंत्रता की आधुनिक अवधारणा से भिन्न थी। यह केवल बाहरी बाधाओं का अभाव नहीं था, जैसा कि नकारात्मक स्वतंत्रता से पता चलता है, बल्कि यह प्रेम, रिश्तेदारों की बहाली और साझा अस्तित्व के साथ जुड़ा हुआ एक दृष्टिकोण था।

स्वतंत्रता की इस वैकल्पिक समझ को पश्चिमी दुनिया में 1960 के दशक के बाद के महिला आंदोलन साहित्य में प्रमुखता मिली। इस परिप्रेक्ष्य पर विशेष रूप से महिला मनोविश्लेषणात्मक विचारकों द्वारा जोर दिया गया, जिन्होंने पता लगाया कि माँ-प्रधान पालन-पोषण का लड़कों और लड़कियों पर अलग-अलग प्रभाव कैसे पड़ता है। माँ के साथ प्रारंभिक संबंध बाहरी दुनिया के प्रति बच्चे की प्रतिक्रियाओं को आकार देता है, और यह प्रक्रिया सहजीवन, अलगाव और व्यक्तिगतकरण के चरणों के माध्यम से सामने आती है। पितृसत्तात्मक समाजों में, लड़के और लड़कियाँ अपनी माताओं की अलग-अलग प्रतिक्रियाओं के कारण इन चरणों को विशिष्ट तरीकों से अनुभव करते हैं।

2.6 स्वतन्त्रता के विविध रूप

फ्रांसीसी विद्वान मॉण्टेस्क्यू ने एक स्थान पर कहा है कि स्वतन्त्रता के अतिरिक्त शायद ही कोई ऐसा शब्द हो जिसके इतने अधिक अर्थ होते है और जिसके नागरिकों के मस्तिष्क पर इतना अधिक प्रभाव डाला हो। मॉण्टेस्क्यू के इस कथन का कारण यह है कि राजनीति विज्ञान में स्वतन्त्रता के विविध रूप प्रचलित हैं, जिसमें अग्रलिखित प्रमुख हैं:-

1. प्राकृतिक स्वतन्त्रता:- इस धारणा के अनुसार प्रकृति की देन है और मनुष्य जन्म से ही स्वतन्त्रता होता है। इसी विचार को व्यक्त करते हुए केसो ने लिखा है कि "मनुष्य स्वतन्त्रत उत्पन्न होता है, किन्तु सर्वत्र यह बन्धनों में बंधा हुआ है"।

प्राकृतिक स्वतन्त्रता का आशय मनुष्यों की अपनी इच्छानुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता से है। संविदावादी विचारकों का मत है कि राज्य की उत्पत्ति के पूर्व व्यक्तियों को इसी प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त थी। संयुक्त राज्य अमरका की 'स्वाधीनता घोषणा' और फ्रांस की 'राज्यक्रान्ति' में इसी प्रकार की स्वतता का प्रतिपादन किया गया है। प्राकृतिक स्वतन्त्रता की इस धारणा के अनुसार स्वतन्त्रता प्रकृति प्रदत्त और निरपेक्ष होती है अर्थात् समाज या राज्य व्यक्ति की स्वतन्त्रता को किसी भी प्रकार से सीमित या प्रतिबन्धित नहीं कर सकता है।

परन्तु प्राकृतिक स्वतन्त्रता की यह धारणा पूर्णतया भ्रमात्मक है। प्राकृतिक स्वतन्त्रता की स्थिति में तो 'मत्स्य न्याय' का व्यवहार प्रचलित होगा और परिणामतः समाज में केवल कुछ ही व्यक्ति अस्थायी रूप से स्वतन्त्रता का उपभोग कर सकेंगे। व्यवहार में प्राकृतिक स्वतन्त्रता का अर्थ है। केवल शक्तिशाली व्यक्तियों की स्वतन्त्रता।

2. व्यक्तिगत स्वतन्त्रता:- इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति के उन कार्यो पर केाई प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिए, जिनका सम्बन्ध केवल उसके ही अस्तित्व से हो। इस प्रकार के व्यक्तिगत कार्यो में भोजन, वस्त्र धर्म और पारिवारिक जीवन को सम्मिलित किया जा सकता है। व्यक्तिगत स्वन्त्रता के समर्थकों के अनुसार इनसे सम्बन्धित कार्यो में व्यक्तियों को पूर्ण स्वन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए। व्यक्तिवादी और कुछ सीमा तक बहुलवादी विचारकों ने इस स्वतन्त्रता का प्रबल समर्थन किया है। मिल व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का समर्थन करते हुए ही कहते है कि ''मानव समाज को केवल आत्मरक्षा के उद्देश्य से ही किसी व्यक्ति की स्वतन्त्रता में व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से हस्तक्षेप करने का अधिकार हो सकता है। अपने ऊपर, अपने शरीर, मस्तिष्क और आत्मा परा व्यक्ति सम्प्रभु हैं।

3. नागरिक स्वतन्त्रता:- नागरिक स्वतन्त्रता का अभिप्राय व्यक्ति की उन स्वतन्त्रताओं से है जो व्यक्ति या राज्य का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है। नागरिक स्वतन्त्रता का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर और अधिकार प्रदान करना होता है। अतः स्वभाव से ही यह स्वतन्त्रता असीमित या निरंकुश नहीं हो सकती है।

नागरिक स्वतन्त्रता के दो प्रकार होते है - (1) शासन के विरोध की स्वतन्त्रता (2) व्यक्ति को व्यक्ति और व्यक्तियों के समुदाय से स्वतन्त्रता। शासन के विरूद्ध व्यक्ति की स्वतन्त्रता लिखित या अलिखित संविधान द्वारा मौलि अधिकारों के माध्यम से या अन्य किसी प्रकार से स्वीकृत की जाती है। नागरिक स्वतन्नता का दूसरा रूप मनुष्य के वे अधिकार है जिन्हें वह राज्य के अन्य समुदायों और मनुष्यों के विरूद्ध प्राप्त करता है।

4. राजनीतिक स्वतन्त्रता:- अपने राज्य के कार्यो में स्वततंतापूर्वक सक्रिय भाग लेने की स्वतन्त्रता को राजनीतिक स्वतन्त्रता कहा जाता है। लास्की के अनुसार, "राज्य के कार्यो में सक्रिय भाग लेने की शक्ति ही राजनीतिक स्वतन्त्रता हैं"।

राजनीतिक स्वतन्त्रता के अन्तर्गत व्यक्ति को ये अधिकार प्राप्त होते है -

(1) मतदान देने का अधिकार

(2) निर्वाचित होने का अधिकार

(3) उचित योग्यता होने पर सार्वजनिक पद प्राप्त करने का अध्किार और

(4) सरकार के कार्यो की आलोचना का अधिकार। इन अधिकारों से यह स्पष्ट है कि राजनीतिक स्वतन्त्रता केवल एक प्रजातन्त्रात्मक देश में ही प्राप्त की जा सकती है।

5. आर्थिक स्वतन्त्रता:- वर्तमान समय में आर्थिक स्वतन्त्रता का तात्पर्य व्यक्ति की ऐसी स्थिति से जिसमें व्यक्ति अपने आर्थिक प्रयत्नों का लाभ स्वयं प्राप्त करने की स्थिति में हो तथा किसी प्रकार उसके श्रम का दूसरे के द्वारा शोषण न किया जा सके। लास्की के अनुसार, ''आर्थिक स्वतन्त्रता की अभिप्राय यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविका कमाने की समुचित सुरक्षा तथा सुविधा प्राप्त हो। व्यक्ति को बेरोजगारी और अपर्याप्ता के निरन्तर भय से मुक्त रखा जाना चाहिए जो कि अन्य किसी भी अपर्याप्ता की अपेक्षा व्यक्तित्व की समस्त शक्ति को बहुत अधिक आघात पहुंचाती है। व्यष्टि को कल को आवश्यकताओं से मुक्त रखा जाना चाहिए।''

6. नैतिक स्वतन्त्रता:- व्यक्ति को अन्य प्रकार की सभी स्वतन्त्रताएं प्राप्त होने पर भी यदि वह नैनिक दृष्टि से परतंत्र हो, तो उसे स्वतन्त्र नहीं कहा जा सकता। नैतिक स्वतन्त्रता ही वास्तविक स्वतन्त्रता एवं महान स्वतन्त्रता है। नैतिक स्वतन्त्रता का अर्थ व्यक्ति की उस मानसिक स्थिति से है जिसमें वह अनुचित लोभ-लालच के बिना अपना सामाजिक जीवन व्यतीत करने की योग्यता रखता हो।

काम्टे के विचार में व्यक्ति की विवेकपूर्ण इच्छा शक्ति ही उसकी वास्तविक स्वतन्त्रता है।

अभ्यास प्रश्न

1. स्वतंत्रता की कौन सी अवधारणा किसी व्यक्ति के कार्यों में बाहरी हस्तक्षेप या बाधाओं की अनुपस्थिति पर जोर देती है?
   (अ) नकारात्मक स्वतंत्रता (ब) सकारात्मक स्वतंत्रता (स) सामाजिक स्वतंत्रता (द) आर्थिक स्वतंत्रता

2. बाहरी बाधाओं की अनुपस्थिति से परे, सकारात्मक स्वतंत्रता किस पर ध्यान केंद्रित करती है?
   (अ) उत्पीड़न से मुक्ति (ब) आत्मनिर्णय और अपनी क्षमता को प्राप्त करना
   (स) आर्थिक समृद्धि (द) व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा करना

3. नकारात्मक और सकारात्मक स्वतंत्रता के बीच संतुलन हासिल करने में मुख्य चुनौती क्या है?
   (अ) सामाजिक मानदंडों को संबोधित करना
   (ब) व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ आर्थिक समृद्धि को संतुलित करना
   (स) आत्म-नियंत्रण के लिए आंतरिक बाधाओं पर काबू पाना
   (द) जीवन के सभी क्षेत्रों में सरकारी हस्तक्षेप को प्रोत्साहित करना

2.7 सारांश

स्वतंत्रता की अवधारणा मानव अधिकारों और राजनीतिक दर्शन की आधारशिला है, जो व्यक्तिगत स्वायत्तता और दमनकारी बाधाओं से मुक्ति की मौलिक आकांक्षा को दर्शाती है। इसमें नकारात्मक स्वतंत्रता शामिल है, जिसमें बाहरी हस्तक्षेप की अनुपस्थिति और सकारात्मक स्वतंत्रता शामिल है, जिसमें आत्मनिर्णय करने और किसी की वास्तविक क्षमता का पीछा करने की क्षमता शामिल है। स्वतंत्रता की बहुमुखी प्रकृति के कारण व्यक्तिगत अधिकारों की सुरक्षा और आम भलाई को बढ़ावा देने के बीच एक नाजुक संतुलन की आवश्यकता होती है। इस संतुलन को बनाए रखना समाजों के लिए एक जटिल और निरंतर चुनौती बनी हुई है, क्योंकि वे नकारात्मक स्वतंत्रता की रक्षा करने और सकारात्मक स्वतंत्रता के लिए संसाधनों और अवसरों के साथ व्यक्तियों को सशक्त बनाने के बीच नेविगेट करते हैं।

स्वतंत्रता की अवधारणा राजनीतिक विचारधाराओं को आकार देती है, शासन सिद्धांतों का मार्गदर्शन करती है और दुनिया भर में न्याय और समानता के लिए आंदोलनों को प्रेरित करती है। जैसे-जैसे हम अपने बदलते सामाजिक परिदृश्य में स्वतंत्रता की खोज और व्याख्या करते हैं, विचारशील संवाद, सहानुभूति और एक ऐसे समाज को बढ़ावा देने की प्रतिबद्धता में शामिल होना आवश्यक है जहां सभी व्यक्ति आत्म-शासित और स्वतंत्र प्राणी के रूप में अपनी पूरी क्षमता का एहसास कर सकें।

2.8 शब्दावली

स्वायत्तता- स्वशासन और निर्णय लेने में स्वतंत्रता, **स्वतंत्र इच्छा-**बाहरी दबाव के बिना चुनाव करने की क्षमता, **स्वतंत्रता-** दबाव या प्रतिबंध से मुक्त होने की अवस्था।

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अ 2.ब 3. स

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. राजनीतिक सिद्धांत अवधारणाएँ एवं विमर्श- संपादक बलवान गौतम, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय

2. जैन, पुखराज- राजनीति विज्ञान, एस0बी0पी0जी0 पब्लिकेशन, आगरा
3. सिंहल, एस0सी0- राजनीतिक सिद्धान्त, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा
4. आर्शीवादम, ए0डी0 तथा मिश्र, कृष्णकान्त- राजनीति विज्ञान, एस0 चॉद कम्पनी लि0, नई दिल्ली
5. गाबा, ओमप्रकाश- राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा, मयूर पेपर बैक्स, नोयडा

6. जौहरी, जे0सी0 एवं सीमा- आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त, स्टर्लिग पब्लिकेशन प्रा0 लि0, नई दिल्ली
7. वर्मा, एस0पी0- मार्डन पालिटिकल थ्योरी, विकास प्रकाशन, नई दिल्ली
8. दास, पी0जी0- मार्डन पालिटिकल थ्योरी,न्यू सेंण्ट्रल बुक एजेंसी,कलकत्तां

2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

9. जैन, एम0पी0- पालिटिकल थ्योरी, आर्थस गिल्ड पब्लिकेशन, दिल्ली
10. संधु, ज्ञान सिंह- राजनीतिक सिद्धान्त, दिल्ली विश्वविधालय
11. वर्मा, एस0एल0-एडवांसड मार्डन पालिटिकल थ्योरी, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली

2.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्वतंत्रता का अर्थ बताते हुए इसके विविध रूपों की विवेचना कीजिये।

2. स्वतंत्रता को परिभाषित करते हुए सकारात्मक और नकारात्मक स्वतंत्रता की चर्चा कीजिये।

इकाई 3 समानता

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 समानता के बुनियादी सिद्धांत

3.3 समानता के अर्थ के सम्बन्ध में इसके दो पहलू

3.3.1 समानता का नकारात्मक पहलू

3.3.2 समानता का सकारात्मक पहलू

3.4 समानता के विभिन्न प्रकार

3.4.1 औपचारिक समानता

3.4.2 अवसर की समानता

3.4.3 परिणामों की समानता

3.5 समानता और नारीवाद

3.6 स्वतंत्रता और समानता में सम्बन्ध

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.11 सहायक उपयोगी सामग्री

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

समानता एक मौलिक और सार्वभौमिक अवधारणा है जो मानव अधिकारों, सामाजिक न्याय और नैतिक सिद्धांतों के केंद्र में स्थित है। यह सभी व्यक्तियों के साथ उनकी जाति, लिंग, धर्म, सामाजिक आर्थिक स्थिति या किसी अन्य विशेषता की परवाह किए बिना निष्पक्षता के साथ व्यवहार करने के विचार का प्रतीक है। समानता की अवधारणा एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहती है जहां सभी को समान अवसर, अधिकार और संसाधनों तक पहुंच प्राप्त हो, जिससे प्रत्येक व्यक्ति को अपनी पूरी क्षमता तक पहुंचने और सम्मानजनक जीवन जीने की अनुमति मिले।

समानता की अवधारणा आधुनिक राजनीतिक विमर्श और विचार में एक केंद्रीय केंद्र बिंदु के रूप में उभरी है, जो जन्म के आधार पर सामाजिक पदानुक्रम की ऐतिहासिक स्वीकृति से एक महत्वपूर्ण प्रस्थान का प्रतीक है। अतीत में, प्राकृतिक पदानुक्रम की धारणाएँ प्रचलित थीं, लेकिन समकालीन राजनीतिक सोच मूल रूप से सभी मनुष्यों की अंतर्निहित समानता में मूलभूत विश्वास पर टिकी हुई है। इस बदलाव को 1789 में फ्रांसीसी क्रांति और अमेरिकी गृहयुद्ध जैसी महत्वपूर्ण घटनाओं के माध्यम से प्रमुखता से प्रदर्शित किया गया, जिसने लोकतंत्र, समानता और स्वतंत्रता के सिद्धांतों को रेखांकित किया। फ्रांसीसी क्रांति ने मध्ययुगीन पदानुक्रम को चुनौती दी, जबकि अमेरिकी गृहयुद्ध ने नस्लीय असमानताओं पर प्रकाश डाला। फिर भी, समानता के विचार को अपनाना बाधाओं से रहित नहीं था।

20वीं सदी की शुरुआत में, आर.एच. टावनी ने ब्रिटिश समाज में प्रचलित "असमानता के धर्म" के बारे में चिंता व्यक्त की। उन्होंने न केवल असमानताओं के अस्तित्व पर बल्कि ऐसी असमानताओं के खतरनाक सामान्यीकरण पर भी अफसोस जताया। हालाँकि, समय के साथ, समानता की धारणा को व्यापक स्वीकृति मिली, जो द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हुए परिवर्तनों से उत्प्रेरित हुई और उपनिवेशवाद और महिला आंदोलन से प्रेरित हुई। आज, समानता मानव समाज की संरचना के लिए आधारशिला के रूप में खड़ी है, फिर भी विवादास्पद बहस इसके दायरे और अनुप्रयोग के इर्द-गिर्द घूमती है। विशेष रूप से विवादास्पद धन और आय वितरण में समानता का अनुप्रयोग है, जिसमें समता-विरोधी विचार पुनरुत्थान का अनुभव कर रहे हैं। इसे राजनीतिक अर्थव्यवस्था की एक धारा द्वारा बढ़ावा दिया गया है, जिसमें कहा गया है कि समतावादी उपाय बाजार की दक्षता में बाधा डालते हैं और अंततः सभी के लिए नकारात्मक परिणाम पैदा करते हैं।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से आप जान पाएंगे:

1. समानता के विभिन्न प्रकारों को जान पायेंगें।
2. समानता के बुनियादी सिद्धांतों को जान पायेंगें।

3. समानता और स्वतंत्रता के मध्य सम्बन्ध को जान पायेंगें।

3.2 समानता के कुछ बुनियादी सिद्धांत

समतावादी समानता पर एक सूक्ष्म दृष्टिकोण रखते हैं जो हर किसी के समान होने या समान बनने की धारणा से परे है। यह केवल गणितीय अवधारणा नहीं है, और कई मूल सिद्धांत समतावादी रुख को रेखांकित करते हैं। आइए इनमें से कुछ मूलभूत सिद्धांतों पर गौर करें:

बुनियादी जरूरतें और जीवन स्तर: समतावादी इस बात पर जोर देते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने का मौलिक अधिकार है। वे जीवन स्तर में महत्वपूर्ण असमानताओं से चिह्नित समाज को अस्वीकार करते हैं, इसके बजाय एक ऐसी सामाजिक संरचना की वकालत करते हैं जहां रहने की स्थिति न केवल न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करती है बल्कि सभी के लिए एक पूर्ण और संतोषजनक जीवन में भी योगदान देती है।

समान सम्मान और गरिमा: समतावादी दृष्टिकोण का केंद्र समान सम्मान का सिद्धांत है। समतावादी किसी भी प्रकार के अपमानजनक व्यवहार या मानवीय गरिमा को कमजोर करने वाली परिस्थितियों का विरोध करते हैं। वे जिस आदर्श समाज की कल्पना करते हैं वह आपसी सहानुभूति और समझ में निहित है, जो साझा मानवता के माहौल को बढ़ावा देता है।

आर्थिक समानता: समतावादी न केवल व्यक्तिगत स्तर पर बल्कि राष्ट्रों के बीच भी विशाल आय और धन असमानताओं के आलोचक हैं। वे एक ऐसी प्रणाली की वकालत करते हैं जो संसाधनों का अधिक न्यायसंगत वितरण सुनिश्चित करे। इसमें आर्थिक संस्थानों और कार्यस्थलों पर लोकतांत्रिक नियंत्रण, सभी के लिए सुलभ गरिमापूर्ण और सार्थक कार्य अवसरों को बढ़ावा देना शामिल हो सकता है।

राजनीतिक समानता: वोट देने या पद के लिए चुनाव लड़ने के मूल अधिकार से परे, समतावादियों के अनुसार, राजनीतिक समानता में नागरिक अधिकारों और सक्रिय लोकतांत्रिक भागीदारी की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है। समतावादी आदर्शों का उद्देश्य व्यक्तियों को अपने जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रभाव डालने, नियंत्रण और एजेंसी की अधिक महत्वपूर्ण भावना को बढ़ावा देने के लिए सशक्त बनाना है।

सामाजिक समानता: समतावाद का विस्तार लिंग, जाति, जातीयता और धर्म जैसे कारकों के आधार पर सामाजिक असमानताओं को संबोधित करने तक है। समतावादी भेदभाव को खत्म करने और इन आयामों में निष्पक्षता और समावेशिता को बढ़ावा देने का प्रयास करते हैं।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि हालांकि ये सिद्धांत समानता के प्रमुख पहलुओं को शामिल करते हैं, लेकिन ये संपूर्ण नहीं हैं। समतावाद की ताकत असमानता और अन्याय के उभरते रूपों को संबोधित करने के लिए चल रहे सुधार और

अनुकूलन की क्षमता में निहित है। मूल सिद्धांत मार्गदर्शक रोशनी के रूप में कार्य करते हैं, एक ऐसे समाज की दृष्टि को आकार देने में मदद करते हैं जहां व्यक्तियों को महत्व दिया जाता है, सम्मान दिया जाता है, और समान स्तर पर पूर्ण जीवन जीने में सक्षम किया जाता है।

3.3 समानता के अर्थ के सम्बन्ध में इसके दो पहलू

3.3.1 समानता का नकारात्मक पहलू:

नकारात्मक समानता, जिसे अक्सर औपचारिक समानता कहा जाता है, कानून के तहत समान व्यवहार सुनिश्चित करने और कुछ विशेषताओं के आधार पर भेदभाव की अनुपस्थिति पर केंद्रित है। यह अवधारणा इस बात पर जोर देती है कि व्यक्तियों के साथ उनके मतभेदों की परवाह किए बिना निष्पक्ष और बिना पक्षपात के व्यवहार किया जाना चाहिए। यहाँ नकारात्मक समानता के प्रमुख पहलू हैं:

समान अधिकार और सुरक्षा: नकारात्मक समानता यह सुनिश्चित करती है कि सभी व्यक्तियों को समान कानूनी अधिकार, सुरक्षा और अवसर प्राप्त हों। यह गारंटी देता है कि जाति, लिंग, धर्म या सामाजिक स्थिति जैसे कारकों के आधार पर किसी के साथ अनुचित व्यवहार या भेदभाव नहीं किया जाएगा।

सार्वभौमिक अनुप्रयोग: नकारात्मक समानता का सिद्धांत सार्वभौमिक रूप से सभी व्यक्तियों पर लागू होता है, चाहे उनकी पृष्ठभूमि कुछ भी हो। इसका उद्देश्य एक समान अवसर स्थापित करना है जहां हर कोई समान नियमों और मानकों के अधीन हो।

कानूनी ढाँचा: नकारात्मक समानता अक्सर कानूनों, संविधानों और भेदभाव-विरोधी क़ानूनों में निहित होती है। यह भेदभावपूर्ण प्रथाओं को चुनौती देने और कानूनी रास्तों के माध्यम से उपचार खोजने के लिए एक आधार प्रदान करता है।

समान अवसर: समान व्यवहार पर ध्यान केंद्रित करने का उद्देश्य व्यक्तियों को अपने लक्ष्यों और आकांक्षाओं को आगे बढ़ाने के लिए समान अवसर प्रदान करना है। यह योग्यता और इस विचार को बढ़ावा देता है कि सफलता व्यक्तिगत प्रयास और क्षमताओं पर आधारित होनी चाहिए।

3.3.2 समानता का सकारात्मक पहलू:

सकारात्मक समानता, जिसे वास्तविक या भौतिक समानता के रूप में भी जाना जाता है, औपचारिक समानता से परे जाती है और अंतर्निहित संरचनात्मक और प्रणालीगत कारकों को संबोधित करने पर ध्यान केंद्रित करती है जो असमानताओं में योगदान करते हैं। इसका उद्देश्य ऐसी स्थितियाँ बनाना है जहाँ सभी को आवश्यक संसाधनों, अवसरों और कल्याण तक समान पहुंच प्राप्त हो। यहाँ सकारात्मक समानता के प्रमुख पहलू हैं:

संसाधनों का पुनर्वितरण: सकारात्मक समानता असमानताओं को कम करने के लिए संसाधनों और अवसरों के पुनर्वितरण की वकालत करती है। इसमें प्रगतिशील कराधान, सामाजिक कल्याण कार्यक्रम और हाशिए पर रहने वाले समूहों के उत्थान के लिए सकारात्मक कार्रवाई पहल शामिल हो सकती है।

न्यायसंगत परिणाम: सकारात्मक समानता का लक्ष्य न्यायसंगत परिणाम प्राप्त करना है, न कि केवल समान व्यवहार। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करके विशेषाधिकार प्राप्त और वंचितों के बीच अंतर को कम करना है कि हर किसी को सम्मानजनक और पूर्ण जीवन जीने का उचित मौका मिले।

संरचनात्मक अन्याय को संबोधित करना: सकारात्मक समानता उन ऐतिहासिक अन्यायों और प्रणालीगत बाधाओं को दूर करने का प्रयास करती है जिन्होंने असमानता में योगदान दिया है। यह स्वीकार करता है कि कुछ समूह वंचित स्थिति से शुरू कर सकते हैं और सच्ची समानता प्राप्त करने के लिए अतिरिक्त समर्थन की आवश्यकता है।

सामाजिक समावेशन: कानूनी अधिकारों से परे, सकारात्मक समानता सामाजिक समावेशन और भागीदारी पर केंद्रित है। इसका उद्देश्य एक ऐसे समाज का निर्माण करना है जहां हर कोई मूल्यवान महसूस करे और उनके जीवन को प्रभावित करने वाले निर्णयों को आकार देने में उनकी आवाज हो।

समग्र दृष्टिकोण: सकारात्मक समानता शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, आवास और आर्थिक अवसरों जैसे कारकों पर विचार करते हुए कल्याण के लिए एक समग्र दृष्टिकोण अपनाती है। यह मानता है कि सच्ची समानता के लिए जीवन के कई आयामों को संबोधित करने की आवश्यकता है।

संक्षेप में, नकारात्मक समानता कानून के तहत समान व्यवहार और भेदभाव की अनुपस्थिति पर जोर देती है, जबकि सकारात्मक समानता संसाधन पुनर्वितरण के माध्यम से संरचनात्मक असमानताओं को संबोधित करने और न्यायसंगत परिणाम बनाने पर केंद्रित है। न्यायसंगत और निष्पक्ष समाज की खोज में दोनों पहलू महत्वपूर्ण हैं, और वे व्यापक समानता प्राप्त करने के प्रयासों में एक-दूसरे के पूरक हो सकते हैं।

3.4 समानता के विभिन्न प्रकार

3.4.1 औपचारिक समानता

जॉन लॉक, एक प्रमुख अंग्रेजी दार्शनिक, ने पुरुषों की प्राकृतिक समानता में निहित समानता की अवधारणा की दृढ़ता से वकालत की, हालांकि महिलाओं को उनके ढांचे से विशेष रूप से बाहर रखा गया। इमैनुएल कांट ने साझा मानवता के परिणामस्वरूप सार्वभौमिकता और समानता पर जोर देकर इस परिप्रेक्ष्य को और मजबूत किया। इसने औपचारिक समानता की अवधारणा को जन्म दिया, जिसमें कहा गया कि सभी व्यक्तियों के साथ उनकी सामान्य मानवीय स्थिति के आधार पर समान व्यवहार किया जाना चाहिए।

औपचारिक समानता की एक महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति कानूनी समानता के सिद्धांत में निहित है, जो यह निर्देश देती है कि कानून को सभी व्यक्तियों के साथ जाति, नस्ल, लिंग, धर्म या सामाजिक पृष्ठभूमि जैसे कारकों के आधार पर भेदभाव किए बिना व्यवहार करना चाहिए। हालाँकि यह सिद्धांत नस्ल, लिंग और सामाजिक स्थिति में निहित विशेषाधिकारों को चुनौती देने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम का प्रतिनिधित्व करता है, लेकिन इसकी सीमाएँ हैं। यह इस तथ्य की उपेक्षा करता है कि कुछ व्यक्तियों को जाति, लिंग या सामाजिक पृष्ठभूमि के कारण भारी बाधाओं का सामना करना पड़ सकता है, जिससे उनके लिए कानून द्वारा घोषित औपचारिक समानता से पूरी तरह से लाभ उठाना असंभव हो जाता है।

मार्क्स ने इस अपर्याप्तता को पहचानते हुए अपने निबंध 'यहूदी प्रश्न पर' में इस मुद्दे पर गहराई से विचार किया। उन्होंने तर्क दिया कि यद्यपि औपचारिक समानता प्रगति को चिह्नित करती है, लेकिन यह वास्तव में मानव मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकती है। बाज़ार की गतिशीलता कुछ सामाजिक बाधाओं को ख़त्म कर सकती है, लेकिन साथ ही उन्होंने निजी संपत्ति के अस्तित्व द्वारा समर्थित वर्ग-आधारित असमानताएँ भी पैदा की हैं। मार्क्सवादियों ने समानता के इस रूप को "बाज़ार समानता" का नाम दिया है, यह दावा करते हुए कि यह केवल समाज की गहरी असमान संरचना को छुपाता है।

समकालीन समय में, समतावादी विचार इस धारणा से परे विकसित हुआ है कि सभी मनुष्य स्वाभाविक रूप से समान हैं और इसलिए उनके पास समान अधिकार होने चाहिए। समझ "समानता" शब्द के अधिक निर्देशात्मक उपयोग की ओर स्थानांतरित हो गई है। समतावादी आज उन नीतियों का समर्थन करते हैं जो केवल व्यक्तियों की वर्णनात्मक विशेषताओं पर भरोसा किए बिना समानता के आदर्श को बढ़ावा देते हैं, यह मानते हुए कि कई महत्वपूर्ण पहलुओं में मनुष्यों के बीच पर्याप्त अंतर मौजूद हैं।

3.4.2 अवसर की समानता

अवसर की समानता एक अवधारणा है जो व्यक्तिगत आत्म-विकास में बाधा डालने वाली बाधाओं को हटाने में निहित है। इसमें यह सुनिश्चित करना शामिल है कि व्यक्तियों को स्थिति, पारिवारिक या सामाजिक पृष्ठभूमि जैसे कारकों के बजाय अपनी प्रतिभा और क्षमताओं के आधार पर करियर बनाने का मौका मिले। मुख्य विचार एक समान अवसर स्थापित करना है, विशेषकर जीवन के शुरुआती बिंदु पर। हालाँकि, अवसर की समानता के निहितार्थ जटिल हो सकते हैं। इसका उद्देश्य प्रतिस्पर्धा करने के लिए समान अवसर प्रदान करना है, लेकिन यह जरूरी नहीं कि समग्र समानता की ओर ले जाए। असमान परिणामों को स्वीकार्य माना जाता है क्योंकि उनका श्रेय अलग-अलग प्राकृतिक प्रतिभाओं, कड़ी मेहनत या भाग्य को दिया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह निर्माण योग्यता आधारित आदर्श द्वारा छिपी एक पदानुक्रमित प्रणाली का समर्थन करता है।

प्रकृति और परंपरा के बीच का अंतर, जिस पर यह अवधारणा आधारित है, हमेशा स्पष्ट नहीं होती है। अवसर की समानता के संस्थागतकरण में करियर को प्रतिभा के लिए खुला रखना और सकारात्मक भेदभाव लागू करना जैसे उपाय शामिल हैं। ये उपाय उचित प्रतिस्पर्धा के परिणामस्वरूप होने वाले असमान परिणामों को वैध बनाते हैं।

हालाँकि, अवसर पर यह जोर व्यक्तियों को समुदाय की भावना से अलग कर सकता है, प्रतिस्पर्धी मानसिकता को बढ़ावा दे सकता है। इसके अलावा, यह पीढ़ियों के बीच असमानताओं को कायम रख सकता है, जिससे सफलता और विफलता के बीच कृत्रिम अलगाव हो सकता है।

समतावादी अवसर की समानता को अस्वीकार नहीं करते हैं, लेकिन वे व्यापक समझ की वकालत करते हैं। वे हर किसी को सार्थक और संतोषजनक तरीके से अपनी क्षमताओं को विकसित करने के साधन प्रदान करना चाहते हैं। केवल प्रक्रियाओं पर ध्यान केंद्रित करने के बजाय, उनके लिए अवसर की वास्तविक समानता का अर्थ ऐसी सामाजिक परिस्थितियाँ बनाना है जो सभी व्यक्तियों को पूर्ण जीवन जीने में सक्षम बनाती हैं। लक्ष्य यह सुनिश्चित करना नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति एक सार्थक जीवन प्राप्त करे, बल्कि एक ऐसा ढाँचा स्थापित करना है जहाँ ऐसे जीवन का अवसर सभी के लिए सुलभ हो।

3.4.3 परिणामों की समानता

समानता की अवधारणा पर एक और दृष्टिकोण परिणामों की समानता पर केंद्रित है, जो जीवन के शुरुआती बिंदु से अंतिम परिणाम पर ध्यान केंद्रित करता है। उल्लेखनीय रूप से, मार्क्स जैसे लोगों ने तर्क दिया कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था द्वारा बाधित समानता की कोई भी धारणा स्वाभाविक रूप से सीमित है। मार्क्स ने पूर्ण सामाजिक समानता की वकालत की, एक ऐसी दृष्टि जिसे केवल निजी संपत्ति के उन्मूलन के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। परिणामों की समानता के समर्थकों का तर्क है कि जब तक समान परिणामों का आश्वासन नहीं होता, समानता के अन्य रूपों की गारंटी अपर्याप्त रहती है।

परिणामों की समानता के विरोधियों का दावा है कि इसके अनुसरण से गतिरोध, अन्याय और यहाँ तक कि अत्याचार भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, हेयक का मानना है कि चूंकि व्यक्तियों की अलग-अलग आकांक्षाएं और लक्ष्य होते हैं, इसलिए उनके साथ समान व्यवहार करने से असमानता हो सकती है। आलोचकों का तर्क है कि समानता की मुहिम व्यक्तिगत स्वतंत्रता की कीमत पर आ सकती है। उनका तर्क है कि समाजवादी समतावादी उपायों का कार्यान्वयन व्यक्तिगत गरिमा और आत्म-सम्मान को कमजोर करता है, और इसके साथ जुड़ा पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण व्यक्तियों को तर्कसंगत विकल्प बनाने की क्षमता से वंचित करता है।

3.5 समानता और नारीवाद

नारीवादी समानता के मुद्दे को लैंगिक दृष्टिकोण से देखते हैं। इस संदर्भ में एक प्रभावशाली कृति सुज़ैन ओकिन की पुस्तक "जस्टिस, जेंडर एंड द फ़ैमिली" (1980) है। विभिन्न क्षेत्रों में समानता के सिद्धांतों का विस्तार करके समान अवसर या पुनर्वितरणात्मक न्याय को बढ़ावा देने वाले कानून वास्तव में समानता स्थापित नहीं कर सकते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि ये नियम और सिद्धांत ऐसे माहौल में काम करते हैं जो पहले से ही लैंगिक असमानता, सामाजिक मानदंडों द्वारा कायम असमानता से दूषित है। इनमें से कई मानदंड महिलाओं के खिलाफ खुले तौर पर भेदभाव नहीं कर सकते हैं, लेकिन उनका संचयी प्रभाव असमानता को सुदृढ़ और वैध बनाना है। नतीजतन, भले ही कानून स्पष्ट रूप से लिंग के बीच अंतर नहीं करता है, फिर भी महिलाएं अक्सर खुद को विशिष्ट व्यवसायों तक ही सीमित पाती हैं। करियर बनाने वाली विवाहित महिलाओं को लैंगिक पूर्वाग्रहों से प्रभावित समाज में विशेष नुकसान का सामना करना पड़ सकता है।

नारीवादी विश्लेषण इस बात पर ज़ोर देता है कि महिलाओं द्वारा सामना की जाने वाली वास्तविक असमानता, जैसे कि पारिवारिक निर्णय लेने में उनका सीमित प्रभाव, बच्चों की देखभाल के लिए उनकी ज़िम्मेदारी, और बाद में कार्यबल में कम भागीदारी, प्राकृतिक या सहज विकल्पों से नहीं, बल्कि सामाजिक रूप से निर्मित भूमिकाओं से उत्पन्न होती है।

फिर भी, यह एक जटिल मामला है, और नारीवादी लिंग भेद को खत्म करने के लिए, विशेष रूप से पारिवारिक मामलों में, राज्य को शामिल करने में संकोच कर सकते हैं। हालांकि सामाजिक प्रथाओं और निर्मित भूमिकाओं में लैंगिक असमानता को पहचानना और जिम्मेदार ठहराना अपेक्षाकृत सरल है, लेकिन प्रभावी उपायों को लागू करना चुनौतीपूर्ण है। लैंगिक समानता की दिशा में सार्थक प्रगति इस बात पर निर्भर करती है कि महिलाएं स्वयं अपनी असमान स्थिति और अपनी अधीनस्थ पारिवारिक भूमिकाओं के प्रति जागरूक हों। जब महिलाएं इन सामाजिक संरचनाओं को नया आकार देने में सक्रिय रूप से भाग लेती हैं तभी लैंगिक समानता हासिल करने में महत्वपूर्ण प्रगति हासिल की जा सकती है।

3.6 स्वतन्त्रता और समानता में सम्बन्ध

स्वतंत्रता और समानता के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय पर राजनीतिशास्त्रियों में पर्याप्त मतभेद है। उनके अनुसार स्वतन्त्रता अपनी इच्छानुसार कार्य करने की शक्ति का नाम है जबकि समानता का तात्पर्य प्रत्येक प्रकार के सभी व्यक्तियों को समान समझने से है। इन व्यक्तियों का विचार है कि यदि सभी व्यक्तियों को स्वतन्त्रता प्रदान कर दी जाती है तो जीवन के परिणाम नितान्त असमान होगें और शक्ति के आधार पर सभी व्यक्तियों को समान कर दिया जाए तो यह समानता व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को नष्ट कर देगी।

राजनीतिक विज्ञान में स्वतन्त्रता और समानता का जो तात्पर्य लिया जाता है, उस अर्थ में स्वतन्त्रता और परस्पर विरोधी नहीं वरन् पूरक है। स्वतन्त्रता की ठीक परिभाषा करते हुए कहा जा सकता है कि ''स्वतन्त्रता जीवन की ऐसी व्यवस्था का नाम है जिसमें व्यक्ति के जीवन पर न्यूनतम प्रतिबंध हों, विशेषाधिकार का नितान्त अभाव हो और व्यक्तियों को अपने व्यक्तित्व के विकास हेतु अधिकतम सुविधाएं प्राप्त हो ।'' इसी प्रकार समानता की सही रूप में परिभाषा करते हुए कहा जा सकता है कि ''समानता का तात्पर्य ऐसी परिस्थितियों के अस्तित्व से होता है जिनके अन्तर्गत सभी व्यक्तियों को व्यक्तित्व के विकास हेतु समान अवसर प्राप्त हो और इस प्रकार उस असमानता का अन्त हो सके जिसका मूल सामाजिक वैषम्य है।''

स्वतंत्रता और समानता की इन परिभाषा के अनुसार स्वतन्त्रता और समानता दोनों का ही उद्देश्य मानवीय व्यक्तित्व का उच्चतम विकास है और इस प्रकार स्वतन्त्रता और समानता एकदूसरे के सहायक और पूरक हैं, परस्पर विरोधी नहीं। इस संबंध में एक्टन ने लिखा है कि ''विरोधाभास यह है कि समानता और स्वतन्त्रता जो कि परस्पर विरोधी विचार केरूप में प्रारम्भ होते है, विश्लेषण करने पर एक दूसरे के लिए आवश्यक हो जाती सकती है।'' यदि समान अवसरों के द्वारा सबके लिए खुले रहते है तो व्यक्ति अपनी रूचि के अनुसार अपनी शक्तियों का विकसा करने की यथार्थ स्वतन्त्रता का उपभोग कर सकता है। जिस समाज में किसी एक वर्ग को विशेषाधिकार प्राप्त रहते हैं और सामाजिक तथा आर्थिक अन्तर पाये जाते है, वहां वह वर्ण अन्य वर्गो पर दबाव डालने की अनुचित शक्ति प्राप्त कर लेता है और निम्न वर्गो को केवल नाम मात्र की ही स्वतन्त्रता प्राप्त होती है।

वास्तव में, समानता के द्वारा स्वतन्त्रता के आधार के रूप में कार्य किया जाता है। एक ऐसा राज्य में जिसमें समानता नहीं हैं, स्वतन्त्रता हो ही नहीं सकती। इस बात को निम्नलिखित रूपों में स्पष्ट किया जा सकता है:-

1. यदि राजनीतिक समानता नहीं होगी, तो स्वतन्त्रता व्यर्थ हो जाएगी और जनता के एक बहुत बड़े भाग को शासन में कोई भाग प्राप्त नहीं होगा।

2. यदि नागरिक समानता नहीं होगी, तो जो व्यक्ति नागरिक अयोग्यताओःसे पीड़ित है, उन्हें स्वतन्त्रता उपलब्ध नहीं होगी।

3. यदि सामाजिक समानता नहीं होगी,तो स्वतन्त्रता पर कुछ ही व्यक्तियों का विशेषाधिकार हो जाएगा।

4. यदि आर्थिक समानता नहीं होगी, तो धन कुछ ही व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रित हो जाएगा और केवल वही वर्ग स्वतन्त्रता का लाभ उठा सकेगा।

ऐसी स्थिति में डा0 आर्शीवादम् ने ठीक ही कहा है कि ''फ्रांस के क्रान्तिकारी न तो पागल थे और न मूर्ख, जब उन्होने स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व का नारा लगाया था।

अभ्यास प्रश्न

1. समानता की अवधारणा क्या हासिल करना चाहती है?

क) व्यक्तियों के बीच विभाजन और भेदभाव

ख) सभी के लिए उचित व्यवहार और निष्पक्षता

ग) सामाजिक आर्थिक असमानताएँ और असमानताएँ

घ) सीमित अवसर और संसाधनों तक पहुंच

2. समानता के संदर्भ में, "समान अवसर" से क्या तात्पर्य है?

क) कुछ समूहों को प्राथमिकता देना

ख) व्यक्तियों के साथ उनकी पृष्ठभूमि के आधार पर अलग-अलग व्यवहार करना

ग) यह सुनिश्चित करना कि सभी को सफलता और उन्नति की समान संभावना मिले

घ) संसाधनों और अवसरों तक पहुंच को प्रतिबंधित करना

3. कौन सा शब्द व्यक्तियों की जाति, लिंग या अन्य विशेषताओं के आधार पर उनके साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार को संदर्भित करता है?

क) समानता ब) भेदभाव स) निष्पक्षता द) व्यक्तिवाद

4. समानता की खोज सामाजिक कल्याण नीतियों को कैसे प्रभावित करती है?

अ) यह सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों के महत्व को कम करता है

ब) इससे सामाजिक सुरक्षा जाल ख़त्म हो जाता है

स) यह उन नीतियों के कार्यान्वयन को प्रोत्साहित करता है जो सामाजिक असमानताओं को संबोधित करती हैं

द) यह कुछ सामाजिक समूहों के लिए अधिमान्य उपचार को बढ़ावा देता है

3.7 सारांश

समानता की अवधारणा आधुनिक समाज के एक शक्तिशाली और आवश्यक स्तंभ के रूप में खड़ी है, जो सभी व्यक्तियों के लिए निष्पक्षता, न्याय और मानवीय गरिमा की वकालत करती है। यह एक ऐसी दुनिया के दृष्टिकोण का प्रतीक है जहां प्रत्येक व्यक्ति को, उनकी पृष्ठभूमि या विशेषताओं के बावजूद, समान अवसर, अधिकार और संसाधनों तक पहुंच प्रदान की जाती है। समानता की खोज ने ऐतिहासिक आंदोलनों को बढ़ावा दिया है, विधायी सुधारों को आकार दिया है, और भेदभाव का मुकाबला करने और समावेशी समाज बनाने के लिए अथक सक्रियता को प्रेरित किया है।

हालाँकि प्रगति हुई है, सच्ची समानता प्राप्त करना एक सतत और जटिल प्रयास बना हुआ है, जिसके लिए गहरी जड़ें जमा चुकी सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक असमानताओं को दूर करने के लिए निरंतर प्रयासों की आवश्यकता है। जैसे ही हम अपने समय की चुनौतियों से निपटते हैं, समानता की अवधारणा एक मार्गदर्शक प्रकाशस्तंभ के रूप में कार्य करती है, जो हमें अधिक दयालु, न्यायपूर्ण और सामंजस्यपूर्ण दुनिया के लिए प्रयास करने के लिए प्रोत्साहित करती है, जहां हर किसी की क्षमता का पोषण और जश्न मनाया जाता है। समानता के प्रति प्रतिबद्धता न केवल समाज के ताने-बाने को समृद्ध करती है बल्कि यह भी सुनिश्चित करती है कि प्रत्येक व्यक्ति सम्मान के साथ जी सके और मानवता की भलाई में अपने अद्वितीय योगदान दे सके।

3.8 शब्दावली

समानता- सभी के लिए निष्पक्षता और भेदभावरहित व्यवहार, समान अवसर-सभी को सफलता और उन्नति के समान अवसर प्रदान करना, असमानता- अवसरों और संसाधनों में असमानताएं और अंतर।

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख 2. ग 3. ब 4. स

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. राजनीतिक सिद्धांत अवधारणाएँ एवं विमर्श- संपादक बलवान गौतम, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय

2. आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत- डॉ. पुखराज जैन, डॉ बी. एल. फड़िया

3. डॉ0 गार्नर - पॉलिटिकल साइंस एण्ड गवर्नमेंट

4.ऑस्टिन- लेक्चर्सऑन जुरिसप्रडेंस

5.गेटिल-पोलिटिकल साइंस

6.डॉ. पुखराज जैन -- राजनीतिक सिद्धान्त

7.एस.सी. सिंघल--- राजनीतिक सिद्धान्त

8.ओ.पी.गाबा - राजनीतिक सिद्धान्त

9.जे.सी.जौहरी -- राजनीतिक सिद्धान्त

3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.वीरकेश्वर प्रसाद -राजनीति शास्त्र के मूल सिद्धान्त, ज्ञानदा पब्लिकेशन, नयी दिल्ली

2 .डी0डी0 राफेल - राजनीतिक दर्शन की समस्यायें, मैकमिलन लन्दन

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. समानता का अर्थ और परिभाषा बताते हुए समानता के विविध रूपों की चर्चा कीजिये।
2. स्वतंत्रता और समानता के मध्य सम्बन्ध पर चर्चा कीजिये।

इकाई 4 न्याय

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 न्याय : अर्थ और परिभाषा

4.3 न्याय के विचार की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

4.3.1. प्राचीन सभ्यताओं में न्याय

4.3.2.मध्ययुगीन काल में न्याय

4.3.3 पुनर्जागरण काल में न्याय

4.3.4 आधुनिक न्याय प्रणालियाँ

4.4 न्याय के विभिन्न आयाम

4.5 सारांश

4.6 शब्दावली

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.8 सहायक समाग्री

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

4.0 प्रस्तावना:

न्याय एक मौलिक अवधारणा है जो मानव समाज और नैतिक सिद्धांतों के केंद्र में स्थित है। यह एक बहुआयामी और जटिल विचार है जिसमें निष्पक्षता, समानता और व्यक्तियों के साथ न्यायसंगत व्यवहार शामिल है। इसके मूल में, न्याय प्रत्येक व्यक्ति को उसका हक देने के विचार के इर्द-गिर्द घूमता है, चाहे वह अधिकारों, अवसरों या उनके कार्यों के परिणामों के संदर्भ में हो। यह सांस्कृतिक, धार्मिक और दार्शनिक सीमाओं से परे निष्पक्षता और कानून के शासन के मूल्यों को बनाए रखने का प्रयास करता है।

न्याय की अवधारणा मानव सभ्यता के दौरान विकसित हुई है, जो प्राचीन सभ्यताओं के कानूनी प्रावधान, प्रसिद्ध दार्शनिकों के नैतिक सिद्धांतों और असमानताओं का मुकाबला करने के लिए उभरे सामाजिक न्याय आंदोलनों में अभिव्यक्ति पाती है। चाहे गलतियों को सुधारने के लिए प्रतिशोधात्मक न्याय की मांग हो या उपचार और मेल-मिलाप को बढ़ावा देने के लिए पुनर्स्थापनात्मक न्याय की, अपने अंतर्निहित उद्देश्य में इसका लक्ष्य एक संतुलित और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना करना है।

न्याय के विचार के इस परिचयात्मक अन्वेषण में हम इसके ऐतिहासिक विकास, इसके विभिन्न आयामों और सामाजिक ताने-बाने को आकार देने में इसके महत्व पर गहराई से विचार करेंगे। हम यह भी समझेंगे कि न्याय कानून के शासन, नैतिकता और समानता की खोज के साथ-साथ समकालीन बहस और चुनौतियों में इसकी स्थायी प्रासंगिकता के साथ कैसे जुड़ा हुआ है।

4.1 उद्देश्य

1. न्याय के अर्थ और परिभाषा को समझ सकेंगें।

2. न्याय की धारणा के विकास को जान पायेंगें।

3. न्याय के विभिन्न आयामों की समझ पाएंगे।

4.2 न्याय का अर्थ:

राजनीतिशास्त्र की अन्य अवधारणाओं की तरह 'न्याय' शब्द को परिभाषित करना आसान नहीं है. न्याय के लिए अंग्रेजी में जस्टिस (Justice) शब्द का प्रयोग किया जाता है, जो लैटिनभाषा के 'जस' (Jus) शब्द से बना है। इसका मूल भाव Justice या Justica है जिसका अर्थ होता है जोड़ना अथवा बांधना। प्राथमिक रूप से जोड़ने,बाँधने अथवा सम्बद्ध होने का भाव न्याय में निहित है। वह यह है कि मनुष्यों के बीच मानवीय संबंधों का एक व्यवस्थित विधान होता है प्रोफ़ेसर बार्कर का मत है कि हम मानवीय संबंधों के साथ-साथ मूल्यों के संकलन तथा एक मूल्य को दूसरे

मूल्य के साथ जोड़ने में भी न्याय तथा न्याययुक्त भाव की कल्पना कर सकते हैं। अतः बार्कर के अनुसार न्याय राजनीतिक मूल्यों का समाधानकर्ता तथा उनका समायोजन है। यह समाज में रह रहे लोगों के अधिकारों एवं कर्तव्यों में सामंजस्य एवं मधुर संतुलन स्थापित करता है।

संकीर्ण अर्थ में न्याय को एक कानूनी प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है, जिसमें न्यायसंगत कानून, अदालतें, स्वतंत्र एवंनिष्पक्ष न्यायिक व्यवस्था , कानून तथा अदालतों के समक्ष प्रत्येक नागरिक की समानता इत्यादि शामिल है। दूसरी ओर व्यापक अर्थों में न्याय के सम्बन्ध में दो विचार हैं। पहले दृष्टिकोण के अनुसार न्याय की धारणा निरपेक्ष,शाश्वत एवं स्थायी है। प्लेटो,एक्विनास,अगस्टाइन जैसे अन्य दार्शनिकों ने शाश्वत न्याय का सिद्धांत मानते हुए न्याय की धारणा में काल और परिस्थितियों के साथ परिवर्तन होने को स्वीकार नहीं किया है। दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार न्याय एक सापेक्ष धारणा है तथा काल, स्थितियों और मूल्यों में परिवर्तन के अनुसार न्याय की धारणा , न्याय के आधार इत्यादि बदलते रहते हैं। अरस्तू, बेन्थम,मिल आदि दार्शनिकों ने इस दृष्टिकोण का समर्थन किया है।

4.3 न्याय के विचार की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि:

न्याय की अवधारणा प्राचीन काल से ही मानव समाज की आधारशिला रही है, जो समुदायों के कार्य करने और व्यक्तियों के परस्पर क्रिया करने के तरीके को आकार देती है। पूरे इतिहास में, न्याय का विचार विभिन्न सभ्यताओं और संस्कृतियों के मूल्यों, विश्वासों और सामाजिक संरचनाओं के अनुसार विकसित और अनुकूलित हुआ है। प्राचीन मेसोपोटामिया के शुरुआती कानूनी संहिताओ से लेकर प्राचीन ग्रीस के दार्शनिक चिंतन और प्राचीन भारत के धार्मिक सिद्धांतों तक, न्याय ने नैतिक ढांचे और कानूनी प्रणालियों को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

4.3.1. प्राचीन सभ्यताओं में न्याय:

दुनिया भर में, न्याय आंतरिक रूप से कानून के शासन, न्याय के मध्यस्थ के रूप में शासकों की भूमिका और एक सामंजस्यपूर्ण और न्यायसंगत अस्तित्व की खोज से जुड़ा हुआ था। इकाई के इस भाग में प्राचीन सभ्यताओं में न्याय के विभिन्न आयामों का पता लगाएंगे, और जान पाएंगे कि कैसे इस कालातीत सिद्धांत ने बाद के समाजों में न्याय के विकास के लिए आधार तैयार किया।

1. **मेसोपोटामिया:**

प्राचीन मेसोपोटामिया में, हम्बूराबी संहिता, जो सबसे पहले ज्ञात कानूनी संहिताओं में से एक थी, ने न्याय की उनकी अवधारणा को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। संहिताओं को एक स्टील (Stele) पर अंकित किया गया था और इसमें जीवन के विभिन्न पहलुओं को नियंत्रित करने वाले कानूनों और विनियमों का संग्रह शामिल था।

"लेक्स टैलियोनिस" या "आंख के बदले आंख, दांत के बदले दांत" का सिद्धांत हम्मुराबी की संहिता की एक केंद्रीय विशेषता थी। इस सिद्धांत का उद्देश्य अपराधों के लिए आनुपातिक प्रतिशोध सुनिश्चित करना है और यह प्रतिशोधात्मक न्याय का एक उदाहरण है।

न्याय की अवधारणा सर्वोच्च प्राधिकारी और न्याय प्रदान करने वाले के रूप में राजा की भूमिका से गहराई से जुड़ी हुई थी। राजा को देवताओं के प्रतिनिधि के रूप में देखा जाता था और समाज में व्यवस्था और निष्पक्षता बनाए रखने के लिए जिम्मेदार माना जाता था।

2. प्राचीन मिस्र:

प्राचीन मिस्र में, न्याय सत्य, न्याय और सद्भाव की देवी माट (Ma'at) से जुड़ा था। माट ने ब्रह्मांडीय व्यवस्था और सत्य, संतुलन और धार्मिकता के सिद्धांतों का प्रतिनिधित्व किया जो मानव आचरण को निर्देशित करते थे।

प्राचीन मिस्र में न्याय की अवधारणा नैतिक और नैतिक व्यवहार के विचार से निकटता से जुड़ी हुई थी। मिस्रवासियों का मानना था कि माट के अनुसार रहने से एक न्यायपूर्ण और समृद्ध समाज का निर्माण होगा।

3. प्राचीन ग्रीस:

ग्रीक दर्शन में न्याय एक केंद्रीय विषय था, प्लेटो और अरस्तू जैसे प्रभावशाली विचारकों ने इसके विभिन्न पहलुओं की खोज की थी । प्लेटो के "रिपब्लिक" में उन्होंने न्यायपूर्ण समाज के संदर्भ में न्याय के विचार पर चर्चा की। प्लेटो के अनुसार, न्याय तभी प्राप्त किया जा सकता है जब प्रत्येक व्यक्ति समाज में अपनी निर्दिष्ट भूमिका निभाए, और तीन वर्ग (शासक, संरक्षक और निर्माता) सद्भाव से काम करें।

अरस्तू के नैतिक सिद्धांतों ने एक गुण के रूप में न्याय की अवधारणा पर जोर दिया। उन्होंने वितरणात्मक न्याय (संसाधनों और सम्मानों का उचित वितरण) और सुधारात्मक न्याय (गलतियों को सुधारने और विवादों को सुलझाने से संबंधित) के बीच अंतर किया।

4. प्राचीन भारत:

प्राचीन भारतीय सभ्यताओं में, न्याय की अवधारणा "धर्म" के सिद्धांत से निकटता से जुड़ी हुई थी। धर्म में व्यक्तियों के नैतिक और नैतिक कर्तव्य शामिल हैं, जिनका पालन करने पर एक न्यायपूर्ण और सामंजस्यपूर्ण समाज का निर्माण होगा।

वेदों और उपनिषदों सहित प्राचीन ग्रंथों ने धार्मिक आचरण और किसी के धर्म का पालन करने के महत्व पर जोर दिया, जिसमें स्वयं, परिवार, समुदाय और दुनिया के प्रति कर्तव्य शामिल थे।

5. प्राचीन हिब्रू:

प्राचीन हिब्रू सभ्यता में, न्याय का विचार हिब्रू बाइबिल (पुराने नियम) में उल्लिखित धार्मिक कानूनों और नैतिक उपदेशों से निकटता से जुड़ा हुआ था। दैवीय न्याय की अवधारणा ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, क्योंकि ईश्वर को अंतिम न्यायाधीश के रूप में देखा जाता था जो धर्मियों को पुरस्कृत करता था और दुष्टों को दंडित करता था। ईश्वर की दृष्टि में न्याय सुनिश्चित करने के लिए धार्मिक कानूनों का पालन आवश्यक था।

इन प्राचीन सभ्यताओं ने मानव समाज में एक मौलिक सिद्धांत के रूप में न्याय के विकास की नींव रखी। इन प्रारंभिक सभ्यताओं में न्याय की समझ अक्सर धार्मिक और नैतिक मान्यताओं के साथ जुड़ी हुई थी, जो नैतिक व्यवहार, कानून के शासन और सामाजिक व्यवस्था के रखरखाव के महत्व पर जोर देती थी। समय के साथ, न्याय की ये मूलभूत अवधारणाएँ बाद की सभ्यताओं की कानूनी प्रणालियों और नैतिक ढाँचों को विकसित और आकार देती रहीं।

4.3.2 मध्ययुगीन काल में न्याय:

मध्ययुगीन काल में, न्याय की अवधारणा विकसित होती रही और धार्मिक और दार्शनिक मान्यताओं, सामाजिक संरचनाओं और कानून के शासन के साथ गहराई से जुड़ी हुई थी। 5वीं से 15वीं शताब्दी तक फैले इस युग में सामंतवाद का प्रभुत्व, शक्तिशाली राजतंत्रों का उदय और जीवन के सभी पहलुओं पर ईसाई चर्च का प्रभाव देखा गया। परिणामस्वरूप, इस समय के दौरान न्याय को अक्सर धर्मनिरपेक्ष और धार्मिक अधिकारियों के संयोजन द्वारा आकार दिया गया था।

1. **सामंती न्याय:** मध्ययुगीन यूरोप में सामंतवाद एक प्रमुख सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था थी। यह वफादारी और सैन्य सेवा के लिए भूमि के आदान-प्रदान पर आधारित था, जिसमें शीर्ष पर राजा या राजा के साथ एक पदानुक्रमित संरचना बनाई गई थी, जिसके बाद रईसों, शूरवीरों और किसानों को रखा गया था।

   सामंती व्यवस्था में न्याय स्थानीयकृत था, जिसमें स्वामी अपनी संपत्ति पर न्याय करते थे। स्वामी ने एक न्यायाधीश और कानून देने वाले के रूप में कार्य किया, अपने जागीरदारों के बीच विवादों को सुलझाया और यह सुनिश्चित किया कि उनके जागीरदार अपने दायित्वों का पालन करें।
2. **ईश्वरीय न्याय और चर्च:** मध्यकाल को ईसाई चर्च के महत्वपूर्ण प्रभाव से चिह्नित किया गया था। चर्च के पास आध्यात्मिक और लौकिक दोनों मामलों पर काफी अधिकार था, और दैवीय न्याय पर इसकी शिक्षाओं का मध्ययुगीन समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा।

   चर्च ने दैवीय न्याय के विचार पर जोर दिया, जहां ईश्वर को अंतिम न्यायाधीश के रूप में देखा जाता था जो धर्मियों को पुरस्कृत करता था और पापियों को दंडित करता था। दैवीय प्रतिशोध की संभावना ने व्यक्तियों के व्यवहार और नैतिक आचरण को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

3. **शाही संहिता और सामान्य कानून:** शक्तिशाली राजशाही के उदय के साथ, न्याय प्रशासन में शाही अदालतें अधिक प्रचलित हो गईं। राजा या सम्राट कानूनी मामलों में सर्वोच्च प्राधिकारी के रूप में निर्णय और निर्णय जारी करते थे।

   सामान्य कानून, प्रथागत प्रथाओं और न्यायिक मिसालों पर आधारित एक कानूनी प्रणाली, इस अवधि के दौरान विकसित होनी शुरू हुई। शाही न्यायाधीशों ने राज्य के चारों ओर यात्रा की, कानून के सुसंगत सिद्धांतों को लागू किया और धीरे-धीरे कानून का एक एकीकृत निकाय बनाया।

4.3.3 पुनर्जागरण काल में न्याय:

14वीं से 18वीं शताब्दी तक फैले पुनर्जागरण काल के दौरान, नए दार्शनिक, वैज्ञानिक और राजनीतिक विचारों के उभरने के साथ न्याय के विचार में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इस युग ने मध्य युग के सख्त धार्मिक हठधर्मिता से प्रस्थान को चिह्नित किया और न्याय, अधिकार और शासन की आधुनिक अवधारणाओं की नींव रखी। पुनर्जागरण ने मानवतावाद, कला और साहित्य का जश्न मनाया, जबकि ज्ञानोदय ने तर्क, व्यक्तिगत अधिकारों और ज्ञान और प्रगति की खोज पर जोर दिया। इन बौद्धिक और सांस्कृतिक आंदोलनों ने न्याय की समझ और अनुप्रयोग को बहुत प्रभावित किया।

1. **मानवतावाद और प्राकृतिक कानून:** पुनर्जागरण मानवतावाद ने मनुष्य के मूल्य और क्षमता पर जोर दिया, शास्त्रीय ग्रंथों के अध्ययन को बढ़ावा दिया और मानवीय कारण, गरिमा और व्यक्तिगत मूल्य की वकालत की।

   इस अवधि के दौरान प्राकृतिक कानून की अवधारणा को प्रमुखता मिली, जिसमें कहा गया कि कुछ नैतिक सिद्धांत प्रकृति में अंतर्निहित हैं और मानव तर्क के लिए सुलभ हैं। प्राकृतिक कानून को धार्मिक सिद्धांतों और सांस्कृतिक मानदंडों से परे, सार्वभौमिक और सभी व्यक्तियों पर लागू माना जाता था।
2. **सामाजिक अनुबंध और व्यक्तिगत अधिकार:** थॉमस हॉब्स, जॉन लोके और जीन-जैक्स रूसो जैसे प्रबुद्ध विचारकों ने सामाजिक अनुबंध के सिद्धांत को विकसित किया, जिसमें कहा गया कि व्यक्तियों ने अपने अधिकारों को सुरक्षित करने और अपने हितों की रक्षा के लिए सरकारें बनाने के लिए स्वेच्छा से एक सामाजिक समझौते में प्रवेश किया।

   इन दार्शनिकों ने जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति के अधिकार जैसे व्यक्तिगत अधिकारों के महत्व पर जोर दिया। उन्होंने तर्क दिया कि इन अधिकारों की रक्षा करना सरकारों की जिम्मेदारी है, और यदि वे ऐसा करने में विफल रहती हैं, तो लोगों को विद्रोह करने और नई सरकार बनाने का अधिकार है।
3. **समानता और कानून का शासन:** प्रबुद्धता काल ने दैवीय अधिकार और वंशानुगत विशेषाधिकार की धारणा को चुनौती देते हुए, कानून के समक्ष समानता के विचार का समर्थन किया। समानता के सिद्धांत का

अर्थ है कि सभी व्यक्तियों के साथ कानून के तहत निष्पक्ष व्यवहार किया जाना चाहिए, चाहे उनकी सामाजिक स्थिति या पृष्ठभूमि कुछ भी हो।

कानून का शासन न्याय का केंद्रीय सिद्धांत बन गया, जिसमें इस बात पर जोर दिया गया कि कानूनों को लगातार और पूर्वानुमानित रूप से लागू किया जाना चाहिए, और शासकों सहित कोई भी कानून से ऊपर नहीं होना चाहिए।

4. **आपराधिक न्याय सुधार:** प्रबुद्ध विचारकों ने आपराधिक न्याय प्रणाली में सुधार की वकालत की। उन्होंने क्रूर और मनमाने दंडों का विरोध किया और सजा में आनुपातिकता की अवधारणा को बढ़ावा देने की मांग की, जहां दंड किए गए अपराध की गंभीरता के अनुरूप होना चाहिए।

   एक इतालवी दार्शनिक, सेसरे बेकरिया ने "ऑन क्राइम्स एंड पनिशमेंट्स" (1764) लिखा, जिसमें यातना, गुप्त परीक्षणों और मृत्युदंड के खिलाफ बहस की, और न्याय के लिए अधिक मानवीय और तर्कसंगत दृष्टिकोण की वकालत की।

5. **सहिष्णुता और धार्मिक स्वतंत्रता:** ज्ञानोदय में धार्मिक सहिष्णुता और अंतरात्मा की स्वतंत्रता को बढ़ावा देने वाले विचारों का विकास भी देखा गया। वोल्टेयर और जॉन लॉक जैसे दार्शनिकों ने चर्च और राज्य को अलग करने का तर्क दिया, जिससे व्यक्तियों को उत्पीड़न के डर के बिना अपने धर्म का पालन करने का अधिकार मिल सके।

   पुनर्जागरण और ज्ञानोदय काल ने न्याय के विचार में गहरा बदलाव लाया, तर्क के महत्व, व्यक्तिगत अधिकारों और एक न्यायसंगत और न्यायसंगत समाज की खोज पर जोर दिया। इन दार्शनिक प्रगतियों ने आधुनिक कानूनी प्रणालियों और न्याय के सिद्धांतों के विकास के लिए आधार तैयार किया जो दुनिया भर के समाजों को आकार देना जारी रखता है।

4.3.4 आधुनिक कानूनी प्रणालियाँ:

आधुनिक कानूनी प्रणालियाँ परिष्कृत और जटिल ढाँचे हैं जो समाजों को नियंत्रित करती हैं, विवादों को सुलझाने, न्याय को बनाए रखने और सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए एक संरचित और व्यवस्थित दृष्टिकोण प्रदान करती हैं। ये कानूनी प्रणालियाँ विभिन्न ऐतिहासिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक प्रभावों से प्रेरणा लेते हुए समय के साथ विकसित हुई हैं। जबकि विशिष्ट संरचनाएं और प्रक्रियाएं देशों के बीच भिन्न-भिन्न होती हैं, वे आम तौर पर सामान्य विशेषताएं साझा करते हैं जो उनके कामकाज को रेखांकित करती हैं। यहां आधुनिक कानूनी प्रणालियों का विवरण दिया गया है:

कानून का स्रोत:

आधुनिक कानूनी प्रणालियाँ आम तौर पर कानून के कई स्रोतों पर आधारित होती हैं, जिनमें शामिल हैं:

संवैधानिक कानून: मौलिक कानून और सिद्धांत जो सरकार की संरचना और कार्यों के साथ-साथ नागरिकों के अधिकारों और स्वतंत्रता को परिभाषित करते हैं।

वैधानिक कानून: विधायी निकायों (जैसे, संसद या कांग्रेस) द्वारा अधिनियमित कानून जो शासन के विभिन्न पहलुओं को कवर करते हैं, जैसे कि आपराधिक कानून, अनुबंध कानून और संपत्ति कानून।

सामान्य कानून: अदालती फैसलों के माध्यम से स्थापित कानूनी सिद्धांत और मिसालें, जो भविष्य के मामलों के लिए मार्गदर्शक के रूप में काम करते हैं।

प्रशासनिक कानून: वैधानिक कानूनों को लागू करने और लागू करने के लिए सरकारी एजेंसियों द्वारा बनाए गए नियम और कानून।

अंतर्राष्ट्रीय कानून: राष्ट्रों के बीच समझौते और संधियाँ जो राज्यों के बीच संबंधों को नियंत्रित करती हैं और वैश्विक मुद्दों का समाधान करती हैं।

शक्तियों का पृथक्करण: कई आधुनिक कानूनी प्रणालियाँ शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत का पालन करती हैं, जो सरकारी प्राधिकरण को तीन शाखाओं में विभाजित करती है: विधायी, कार्यकारी और न्यायपालिका। यह पृथक्करण किसी एक शाखा को अत्यधिक शक्ति के प्रयोग करने से रोकने और जाँच और संतुलन की एक प्रणाली बनाने के लिए डिज़ाइन किया गया है।

उचित प्रक्रिया और अधिकार:

आधुनिक कानूनी प्रणालियाँ उचित प्रक्रिया पर जोर देती हैं, यह सुनिश्चित करती हैं कि अपराध के आरोपी या कानूनी कार्यवाही में शामिल व्यक्तियों को उचित उपचार, कानूनी प्रतिनिधित्व तक पहुंच और सुनवाई का अधिकार मिले। व्यक्तिगत अधिकारों की सुरक्षा, जैसे निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार और गैरकानूनी हिरासत से मुक्ति, आधुनिक कानूनी प्रणालियों का एक मूलभूत पहलू है।

आधुनिक कानूनी प्रणालियाँ लगातार विकसित हो रही हैं, सामाजिक परिवर्तनों और प्रौद्योगिकी में प्रगति के अनुरूप ढल रही हैं। वे आवश्यक ढांचे के रूप में कार्य करते हैं जो न्याय को कायम रखते हैं, व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा करते हैं, और निष्पक्ष और न्यायसंगत तरीके से संघर्षों और विवादों को हल करने के लिए एक तंत्र प्रदान करते हैं।

4.4 न्याय के विभिन्न आयाम

- **न्याय का कानूनी आयाम :** कानूनी शब्दावली में कानून की प्रणाली को न्याय की प्रणाली कहा जाता है।कानूनी प्रणाली का सम्बन्ध नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा से है। चूँकि नागरिकों को न्याय कानून के

माध्यम से प्राप्त होता है, इसलिए राज्य की विधायी संस्थाएं कैसे कानून बनाती हैं? किस प्रकार उन्हें लागू करती है? और कैसे उनका पालन करवाती हैं- इस प्रकार के सभी प्रश्न न्याय के कानूनी पक्ष को महत्व प्रदान करते हैं।

न्याय के कानूनी पक्ष में दो बातें महत्वपूर्ण हैं: पहला न्यायपूर्ण कानून का निर्माण और दूसरा, कानून के अनुसार न्याय मिलना। न्यायपूर्ण कानून के निर्माण का तात्पर्य है कि विधानमंडल द्वारा बांये गए कानून न्यापूर्ण एवं तर्कपूर्ण होने चाहिए। कानून सब लोगों के लिए समान हो और अवांछनीय भेदभाव न हो। न्यायपूर्ण कानून बनाने का अर्थ यह नहीं है कि हर व्यक्ति(बच्चा और बूढा) के लिए समान कानून हो बल्कि इसका अर्थ है समान व्यक्तियों के लिए समान कानून हो। न्यायपूर्ण आधार पर कानून असमान हो सकता है। उदहारण के तौर पर यदि सरकार राशन बाँटने की कोई योजना लाती है तो वह सभी परिवारों को समान रूप से राशन ना वितरित करते हुए प्रत्येक परिवार में सदस्यों की संख्या के आधार पर कम या ज्यादा राशन का वितरण सुनिश्चित करेगी तो इस प्रकार प्रथम दृष्टया देखने पर यह लग सकता है कि परिवारों को राशन बांटने में असमानता बरती गए है परन्तु यदि प्रत्येक परिवारों की आवश्यकता को ध्यान में रखा जाए तो यह नितांत न्यायपूर्ण व्यवस्था होगी।

- **न्याय का राजनीतिक आयाम:** वस्तुतः राज्य और जनता का सम्बन्ध राजनैतिक न्याय का प्रश्न है। सामान्य अर्थ में, बिना किसी भेदभाव के, हर व्यक्ति को राज्य सत्ता में हिस्सा मिलना राजनीतिक न्याय है। अतः वयस्क मताधिकार, निर्वाचित सरकार एवं नागरिक अधिकारों की उपस्थिति राजनीतिक न्याय की स्थापना के लिए पूर्व शर्तों में से एक है। इस प्रकार राजनीतिक न्याय की स्थापना के लिए राजनीतिक सत्ता का उपयोग जन प्रतिनिधियों द्वारा जनता के हित में किया जाना चाहिए। शासन शासितों की इच्छा पर टिका होना चाहिए. इस प्रकार जनता की राज्य सत्ता में सक्रिय भागीदारी ही राजनीतिक न्याय है।

- **न्याय का सामाजिक-आर्थिक आयाम**: सामजिक न्याय का प्रश्न सामाजिक समानता और सामाजिक अधिकारों से जुड़ा है। अतः शोषण का निषेध, अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा, भेदभाव की समाप्ति, कार्य की न्यायपूर्ण दशाएं, विचार अभियक्ति, विश्वास एवं पूजा की स्वतंत्रता सामाजिक न्याय की स्थापना की पूर्व शर्तों में से हैं। अपने व्यापक अर्थ में सामाजिक न्याय का तात्पर्य है कि सामाजिक जीवन में सभी को समान लाभ तथा लाभ के अवसर चंद लोगों के हाथों में न सिमट कर जन समान्य को- विशेषकर गरीब एवं असहाय वर्गों को भी उसका समुचित हिस्सा मिले ताकि वे सामान्य रूप से सुखी, सम्मानित और निश्चिन्त जीवन व्यतीत कर सकें।

  आर्थिक न्याय का विचार एवं सामाजिक न्याय के आदर्श आपस में इतने घुल मिल गए हैं कि ऐसा लगता है कि आर्थिक न्याय के बिना सामाजिक न्याय अधूरा है। सरल शब्दों में आर्थिक न्याय का अभिप्राय है-

आर्थिक शोषण की समाप्ति, देश के भौतिक साधनों का उचित बँटवारा एवं अधिक से अधिक लोगों के हित में उसका उपयोग। लास्की के अनुसार समाज में सभी नागरिकों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति होना ही आर्थिक न्याय है।

अभ्यास प्रश्न

1.न्याय का प्राथमिक सिद्धांत क्या है जो व्यक्तियों के साथ न्यायसंगत और पक्षपात रहित व्यवहार करने की मांग करता है?

(अ) निष्पक्षता (ब) पक्षपात (स) पूर्वाग्रह (द) बहिष्करण

2. न्याय का कौन सा पहलू यह सुनिश्चित करने पर केंद्रित है कि अपराध के आरोपी व्यक्तियों को निष्पक्ष और निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार है?

(अ) उचित प्रक्रिया (ब) पुनर्स्थापनात्मक न्याय (स) प्रक्रियात्मक न्याय (द) कानून का शासन

3. आर्थिक और सामाजिक असमानताओं को दूर करने के लिए समाज के भीतर संसाधनों, अवसरों और लाभों के उचित वितरण को कौन सा शब्द संदर्भित करता है?

(अ) राजनीतिक न्याय (ब) आर्थिक न्याय (स) नैतिक न्याय (द) वितरणात्मक न्याय

4.5 सारांश

निष्पक्षता, समानता और नैतिक आचरण की खोज में निहित, न्याय मानवीय संबंधों, कानूनी प्रणालियों और सामाजिक संरचनाओं का मार्गदर्शन करने वाले एक नैतिक कम्पास के रूप में कार्य करता है। इसकी बहुआयामी प्रकृति में विविध गतिशीलता शामिल है, प्रतिशोधात्मक और पुनर्स्थापनात्मक न्याय से लेकर वितरणात्मक और सामाजिक-आर्थिक न्याय तक, प्रत्येक मानव अनुभव के विभिन्न पहलुओं को संबोधित करता है। पूरे इतिहास में, न्याय समाज की बदलती जरूरतों और मूल्यों के अनुरूप विकसित हुआ है। प्राचीन सभ्यताओं के दैवीय न्याय से लेकर पुनर्जागरण और प्रबुद्धता के दौरान व्यक्तिगत अधिकारों और कानून के

शासन पर जोर देने तक, न्याय ने मानव सभ्यता के पाठ्यक्रम को आकार दिया है, आधुनिक कानूनी प्रणालियों और नैतिक ढांचे के लिए आधार तैयार किया है।

न्याय की खोज में, हमें याद रखना चाहिए कि यह केवल एक अमूर्त अवधारणा नहीं है बल्कि कार्रवाई का आह्वान है। इसके लिए हमें अन्याय के खिलाफ खड़े होने, हाशिये पर पड़े और उत्पीड़ितों के अधिकारों की वकालत करने और सहानुभूति और समझ को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। न्याय के आदर्शों को अपनाकर और इसके सिद्धांतों के प्रति सामूहिक प्रतिबद्धता को बढ़ावा देकर, हम एक ऐसी दुनिया का निर्माण कर सकते हैं जो वास्तव में सभी के लिए निष्पक्षता, समानता और करुणा का प्रतीक है।

4.6 शब्दावली

वितरणात्मक न्याय- समाज के भीतर संसाधनों, अवसरों और लाभों का उचित और समान वितरण सुनिश्चित करें।

प्रक्रियात्मक न्याय - कानूनी प्रक्रियाओं और प्रक्रियाओं की पारदर्शिता, यह सुनिश्चित करना कि व्यक्तियों के साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार किया जाए और उन्हें निष्पक्ष सुनवाई तक पहुंच प्राप्त हो।

राजनीतिक न्याय- सत्ता का उचित वितरण, राजनीतिक भागीदारी तक पहुंच, और समाज के भीतर प्राधिकार के पदों पर बैठे लोगों की जवाबदेही।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (अ) 2. (अ) 3. (ब)

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

राजनीतिक सिद्धांत अवधारणाएँ एवं विमर्श- संपादक बलवान गौतम, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय

राजनीतिक सिद्धांत की रूपरेखा – ओ. पी. गाबा

आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत- डॉ. पुखराज जैन, डॉ बी. एल. फड़िया

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. न्याय के अर्थ को बताते हुए न्याय के विचार की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट कीजिये।

2. न्याय के विभिन्न आयामों का वर्णन कीजिये।

इकाई 5 कानून

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 कानून: अर्थ, परिभाषाएं

5.3 कानून के आवश्यक तत्व

5.4 कानून के श्रोत

5.5 कानून के प्रकार

5.6 कानून की प्रकृति की विभिन्न व्याख्याएं

5.7 कानून का शासन

5.8 कानून और नैतिकता

5.9 सारांश

5.10 शब्दावली

5.11अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.13 सहायक/उपयोगी सामग्री

5.14 निबंधात्मक प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

हमें हर दिन अपने जीवन को आसान बनाने के लिए कुछ नियम-कानून की जरुरत होती है। कानून हमारे जीवन के हर एक पहलु को प्रभावित करता है। कानून ही हमें शिक्षा, स्वस्थ, रोजगार आदि महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सुरक्षा दिलाने का काम करता है। जब हम सड़क पर होते हैं तो तमाम सड़क कानूनों से बधे होते हैं और इन कानूनों के आभाव में अराजकता की स्थिति पैदा हो सकती है। कानून हर व्यक्ति के लिए इतना महत्वपूर्ण है कि उसकें बारे में जानकारी होना जरुरी है जैसे कानून का अर्थ , परिभाषा, स्रोत , प्रकार आदि।

इस इकाई में कानून की अवधारणा का अध्ययन करेंगे।

5 .1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त हम यह जान सकेंगे –

1. कानून का अर्थ , परिभाषा , प्रकृति और स्रोतों को जान पाएंगे।
2. कानून का वर्गीकरण करने में सक्षम होंगे।
3. कानून का प्रवर्तन कैसे होता हैं जान पायेंगे।

5.2 कानून का अर्थ व परिभाषा

मनुष्य समाज में रहता है और हर मनुष्य के विचार, लक्ष्य और आदर्श अलग-अलग होते हैं। इस लिए उनके कार्यों को नियंत्रित करने के लिए कुछ एकसमान नियम होते हैं इन एकसमान नियमों को जो मानव व्यवहार को नियंत्रित करते है उन्हें कानून कहा जाता है। राजनीतिक सिध्दांतों में कानून का एक महत्वपूर्ण स्थान है। कानून राजनीति से करीब से जुड़ा हुआ है कानून के बिना राज्य अराजक हो जायेगा और राज्य के बिना कानून अर्थहीन है। कानून की अवधारणा सभ्य समाज के अस्तित्व के साथ ही उपजी है। राज्य अपने नागरिकों के लिए जो निर्देशात्मक नियम बनता है, उन्हें हम विधि या कानून कहते हैं। राज्य सभी संगठनो में सबसे ऊँचा स्थान रखता है इस लिए राज्य द्वारा दिए गये कानूनों का पालन सभी सदस्यों द्वारा किया जाता है। निर्देशात्मक कानून यह बताते हैं कि किस परिस्थिति में मनुष्य को क्या करना चाहिए या क्या नहीं करना चाहिए। लॉ शब्द पुराने ट्युटनिक मूल 'लैग' से बना है, जिसका अर्थ स्थिर और सर्वत्र समान रूप से स्थित होना है। लॉ शब्द लेटिन भाषा के शब्द के जूस (jus) जो की jungere से जुड़ा है जिसका मतलब बंधन / बंधना है। कानून का सामान्य अर्थ मानवीय कार्यों को निर्देशित करने के लिए नियमों का समूह है।

कानून या नियम शब्द का प्रयोग अलग अलग रूप में किया जाता है। वैज्ञानिक नियम में कार्य और उसके कारन का सम्बन्ध कायम किया जाता है। जैसे गति का नियम और गुरुत्वाकर्षण का नियम। सामाजिक नियम व्यक्ति को समाज के सदस्य के तौर पर मार्गदर्शन करते है , ये एक प्रकार से रीति रिवाज या प्रथाएं होती हैं। नैतिक नियम सही या गलत के बारे में होते हैं ये अंत:करण या विवेक से प्रेरित रहता है। राजनीतिक नियम वे नियम हैं जो व्यक्ति के व्यव्हार का राज्य के सदस्य के रूप में नियंत्रण और मार्गदर्शन करते हैं। राजनीतिक कानून का सम्बन्ध व्यक्ति के ऐसे कार्यों से है जिनका दूसरों पर प्रभाव पड़े। राज्य राजनीतिक कानूनों को जबरन मनवाने का अधिकार रखता है।

कानून की कोई एक सामान्य परिभाषा नहीं है जिससे उसे पूर्ण रूप से समझा जा सके अलग अलग विद्वानों ने इसे अलग तरह से परिभाषित किया है।

अरस्तू " परिपूर्ण कानून मानव प्रकृति में निहित है और मानव प्रकृति से प्राप्त किया जा सकता है।

आस्टिन " कानून संप्रभु का आदेश है" अर्थात कानून को एक निश्चित उच्चतर सत्ता का आदेश कहा जा सकता है।

सर हेनरी में ने इस परिभाषा को संकीर्ण माना और कहा कि समाज में प्रचलित कई कानून विभिन्न सामाजिक बलों का परिणाम है। कानून के तीन प्रमुख स्रोत हैं : 1 सार्वजनिक स्वीकृति 2 रीतिरिवाज तथा प्रथाएं और 3 राजनीतिक अधिकार सत्ता। पहले तो कानून के तात्विक स्रोत हैं और तीसरा ओपचारिक।

पेटन " कानून उन नियमों का निकाय है जो समुदायों में बाध्यकारी नियमों के रूप में प्रचलित होते हैं और जिसके द्वारा नियमों के बाध्यकारी प्रावधान का सक्षम बनाने के लिए नियमों को पर्याप्त अनुपालन सुनिश्चित किया जाता है।

ए. वी . डायसी " कानून जनमत का प्रतिबिम्ब है"

जर्मन न्यायशास्त्री इहरिंग के अनुसार " कानून राज्य की नियंत्रण की शक्ति है, जिसका उद्देश्य व्यक्तिगत और सामाजिक हितों का समन्वय करके उनकी रक्षा करना और संघर्ष के अवसरों को कम करना है। कानून द्वारा समाज में अच्छे जीवन की स्थितियों की गारंटी मिलती है।"

फेडरिक कार्ल वोन सेविग्नी (Savigny) " कानून समुदाय के भीतर अचेतन विकास का विषय है जिसे ऐतिहासिक परपेक्ष्य में समझा जा सकता है सेविने के सिद्धांत वोक्सजिस्ट के अनुसार कानून का तात्पर्य लोगों की इच्छा है।

रस्कोई पाउंड " कानून राजनैतिक रूप से संगठित समाज में बल के सुव्यवस्थित प्रयोग के माध्यम से सामाजिक नियंत्रण है।

वुडरो विल्सन के अनुसार "कानून प्रचलित विचार और व्यवहार का वह अंश है जिसे एक सामान नियमों के रूप में स्पष्ट और औपचारिक मान्यता दी गयी हो, और इन नियमों को शासन की सत्ता और शक्ति का समर्थन प्राप्त हो।

जे. डब्लू. साल्मंड " कानून उन सिद्धांतों का समुच्चय है जिन्हें राज्य मान्यता देता है और न्याय के प्रवर्तन के दौरान लागू करता है।

कानून का पालन राज्य के सभी सदस्यों के लिए बाध्यकारी है। इनकी खास बात यह होती है कि हर सदस्य के लिए सामान रूप से लागू होते हैं। इन कानूनों की अवहेलना करने वालों को दण्ड दिया जाता है। इन्हें प्रयोग करने की निश्चत प्रक्रिया होती है।

5.3 कानून के आवश्यक तत्व

1 एकरूपता कानून की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है।

2 कानून के लिए समाज की जरुरत होती है क्योंकि समाज के संचालन के लिए नियमों की जरुरत होती है।

3 कानून बनाने व उन्हें लागू करने के लिए संप्रभु सत्ता की जरूरत होती है।

4 समाज के सदस्यों को कानून का पालन करना होता है अन्यथा राज्य द्वारा दण्डित होना पड़ता है।

5 कानून का मुख्य उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था को सुनिश्चित करना होता है , जिससे मानवता का भला हो सके और कानून पालन समाज के हित के लिए भी किया जाता है।

6 कानून निश्चित व सर्व्यव्यापक होते हैं। कानून सभी पर सामान रूप से लागू होते हैं।

प्राचीन यूनान में प्लेटो व अरस्तू दोनों ने ही कानून के शासन का समर्थन किया। मध्य युग में कानून को ईश्वरीय विधान के रूप में माना गया। आधुनीक युग की शुरुआत में हॉब्स ने सबसे पहले माना कि कानून परामर्श नही बल्कि आदेश होता है। जॉन आस्टिन ने कानून को संप्रभु का आदेश बताया और इस बात पर बल दिया कि यदि कानून की अवमानना करने वाले को दंड दिया जायेगा। वहीं आधुनिक विचारक मेक्स वेबर ने कानून में बल प्रयोग को आवश्यक बताया। आधुनिक दृष्टी में कानून का मतलब बल प्रयोग ही नहीं है बल्कि उसकी प्रमाणिकता , सर्वमान्यता और उसे सिद्ध करने से है। नागरिक भी कानून का पालन इसी लिए करते हैं क्योंकि कानून सर्वमान्य नियमों का द्योतक है। इन नियमों का स्वभावतः पालन किया जाता है व समाज के लिए मूल्यवान समझे जाते हैं। जब कानून का पालन नहीं किया जाता है तब बल- प्रयोग या दंड के भय का प्रयोग किया जाता है। बल – प्रयोग के बिना भी कानून का पालन संभव है। इस प्रकार कानून का सार तत्व प्रमाणिकता है। प्रमाणिकता का अर्थ यह है कि नागरिक उस कानून को उचित, कल्याणकारी या सुविधाजनक मानकर अपने-आप उसका पालन करने को तत्पर हों। प्रमाणिकता ही कानून को स्थायी रूप देती है। अगर कोई तानाशाह बल -प्रयोग करके मनमाने कानून लागू कर दे तो प्रमाणिकता के आभाव में वे नागरिकों से पूर्ण निष्ठा नही प्राप्त कर पाएंगे , धीरे-धीरे विद्रोह की भावना पनपते रहेगी और मौका मिलते ही तानाशाह के कानून को ख़त्म कर देंगे। यदि कानून प्रमाणिक होगा तो नागरिक सहर्ष उसका पालन करेंगे।

कानून का मुख्य लक्षण यह है कि उसे नागरिक अपनी इच्छा से माने। कानून प्रचलित मूल्यों के अनुरूप होना चाहिए और नागरिकों की सहमति पर आधारित व तर्कसंगत होना चाहिए।

5.4 कानून के स्रोत (Sources of Law)

कानून विकास का परिणाम है। कानून के विकास में अनेकों कारकों की भागीदारी रही है। इन कारकों को कानून के स्रोत कहा जाता है। जो निम्नलिखित हैं :

1 रीति-रिवाज या परम्पराएं (Customs)- परंपरा कानून का प्रारंभिक स्रोत है। रीति-रिवाजों का निर्माण नहीं होता वरन धीरे-धीरे उनका विकास होता है। ये समाज के वे प्रचलित नियम होते हैं, जिन्हें समाज के सभी लोग लम्बे समय

से मानते चले आ रहे हैं। इन रीति रिवाजों के पीछे सामाजिक संगठन का नियंत्रण तथा समाज का नैतिक बल रहता है। यह समाज में ज्यादा प्रचलित हो जाते हैं तो राज्य द्वारा इन्हें कानून का रूप दे दिया जाता है।

2 धर्म – परम्पराओं की तरह धर्म भी कानून का आधार है। प्राचीन समाज में धर्म, विश्वास और इस तरह अन्य चीजे लोगों के जीवन से जुड़ी होती थी। अगर हम प्राचीन रोम का इतिहास देखें तो कानून बहुत हद तक धार्मिक नियमों पर आधारित था। आज भी भारत में विवाह और उत्तराधिकार के नियम धर्म पर आधारित हैं।

3 क़ानूनी टीकाएँ- अनेक विधिवेत्ताओं ने अलग-अलग देश के कानून के तत्व की व्याख्या देने के लिए अपनी टीकाएँ लिखी हैं। ऐसे प्रश्न जिनके विषय में कानून स्पष्ट नहीं है, उन पर उपयुक्त तर्क व प्रमाण देकर अपनी राय व्यक्त की है। विधिवेत्ता ने अपनी बात प्रभावशाली तरीके से की हो कि उसे कानून के बराबर माना जाने लगा हो। हालाँकि कुछ विरली टीकाओं को ही इतना महत्व मिलता है जैसे ब्रिटेन में कोक और ब्लेक्स्टन की टीकाओं को बहुत मान्यता दी जाती हैं। न्यायलय भी अपने निर्णयों के आधार के रूप में इन टीकाओं को लेते हैं।

4. न्याय-निर्णय – कई मामलों में कानून अस्पष्ट या अनिश्चित होता है ऐसे में न्यायाधीश उपुक्त तर्क व प्रमाण देकर अपना अभिमत देते हैं जो कानून की तरह मान्य होता है। समय समय पर न्यायलयों द्वारा दिए गये निर्णयों कानून को नई व्याख्या देते हैं जो भविष्य के लिए आधार बन जाते हैं।

5. साम्या (Equity)- जब कानून तो स्पष्ट हो पर न्यायाधीश को यह लगे कि संबद्ध पक्ष को सहायता (रिलीफ) देना न्याय होगा तो न्यायाधीश साम्या के सिध्दांत का प्रयोग करते हुए ऐसी सहायता की व्यवस्था करता है। यह भी एक तरह से न्यायाधीश निर्मित कानून है।

6.विधि-निर्माण – ऐसे कानून जो देश के विधानमंडल के द्वारा विधिवत पारित किये जाते हैं, वे कानून का मुख्य स्रोत हैं विधायिका कानून का प्रत्यक्ष स्रोत हैं। आज के युग में सरकार के तीन अंगों में से विधायिका कानून बनाती है। विधायिका नए कानून बनती है, पुराने कानूनों को संशोधित करते हैं। कानून बनाने का उद्देश्य लोक कल्याण करना होता है।

वुड्रो विल्सन ने कानून के विकास के सन्दर्भ में लिखा है कि "रीति रिवाज कानून का आदिम आधार हैं, लेकिन धर्म भी रीति-रिवाज के समकालीन और उसी के सामान सफल स्रोत है। रास्ट्रीय विकास की सामान अवस्थाओं में रीतिरिवाज और धर्म दोनों ही सामान रूप से कानून के स्रोत हैं। न्याय-निर्णय का उदय ही एक अधिकार-सत्ता के रूप में होता है और ये न्याय-निर्णय बहुत पुराने समय से साम्य के साथ साथ कानून के विकास में भाग लेते आये हैं। रीतिरिवाज, धर्म,

न्याय-निर्णय और समय इन चारों के आधार पर जब समाज में कानून काफी विकसित हो चुका होता है उसके बाद ही कानून-निर्माण , चेतना वैज्ञानिक विचार-विमर्श , तर्क कानून के स्रोत बनते हैं।

5.5 कानून के प्रकार

1.संवैधानिक कानून – जिस कानून द्वारा राज्य स्वयं नियंत्रित होता है ऐसे कानून को संवैधानिक कानून कहा जाता है। ऐसे कानून जो किसी संस्था द्वारा राज्य के शासन के लिए बनाये जाते हैं। ये कानून विधानमंडल द्वारा भी बनाये जा सकते हैं और परम्पराओं के द्वारा भी इनका विकास हो सकता है। ये लिखित या अलिखित हो सकते हैं। संवैधानिक कानून विधायिका की इच्छा से भी ऊपर अंतिम संप्रभु की इच्छा से बनता है। मेकइवर कहते हैं कि संविधान कानून सरकर के विभिन्न विभागों के कार्यों को निश्चित करता है और शासकों और शासितों के बीच सम्बन्ध निर्धारित करता है। इसका उदय समाज की एकता के उत्तेर में होता है जो निश्चित और स्पष्ट करता है कि राज्य को क्या करना चाहिए और उसका संगठन कैसा होना चाहिए। संवैधानिक कानून सरकार की सत्ता और शक्ति को मर्यादित कर देता है। परिणाम स्वरुप सर्कार निर्धारित सीमा के भीतर ही अपनी अधिकार सत्ता का उपयोग कर सकती है।

2 .साधारण कानून

ये वे लिखित कानून हैं जो राज्य के विधानमंडल द्वारा बनाये जाते हैं और ये कानून नागरिकों के आपसी सम्बन्ध, राज्य के नागरिकों के साथ संबधों को निर्धारित करते हैं। इन्हें साधारण कानून या अधिनियम कहा जाता है। अदालते इन्हें मानती हें और इन्हें भंग करने वाले को दंड देती है। मेकइवर ने कहा है कि राज्य कानून से बनता भी है और कानून को बनता भी है। हालैंड ने साधारण कानून को दो वर्गों में बांटा सार्वजनिक कानून और वैक्तिक कानून।

2.1.व्यक्तिगत कानून – ऐसे कानून जो व्यक्ति के पारस्परिक संबंधों को निश्चित करते हैं। यह व्यक्ति के अधिकारों और उत्तरदायित्व को निश्चित करता है। उद्धरण के लिए ऋण सम्बन्धी कानून।

2.2 सार्वजानिक कानून – सार्वजानिक कानूनों का सम्बन्ध राज्य के संगठन, सरकारी कार्यों के परिसीमन और राज्य तथा व्यक्ति के संबंधों से है।

3 राष्ट्रीय कानून – सार्वजनिक व वैयक्तिक कानूनों दोनों मिलकर राष्ट्रीय कानून कहलाते हैं। ये राज्य की सीमा के अन्दर सभी व्यक्तियों और संघों पर लागू होते हैं और राज्य की सर्वोच्च सत्ता द्वारा लागू किये जाते है।

4.अध्यादेश

ये वे आदेश होते है जो असाधारण परिस्थितियों में राज्य की कार्यपालिका के प्रधान द्वारा जारी किये जाते हैं। ये एक निश्चित समय के लिए जारी किये जाते हैं और इनका प्रभाव वही होता है, जो विधानमंडल द्वरा पारित कानून का।

5.सामान्य कानून –

ये कानून प्राचीन रीति- रिवाज तथा परम्पराओं पर आधारित होते हैं। इंग्लेंड के शासन में इनका विशेष महत्व है।

6. प्रशासनिक कानून

यह कानून राज्य का अपने कर्मचारियों के साथ सम्बन्ध निश्चित करता है।यह प्रशासनिक संगठन, अधिकारीयों और कर्मचारियों की अधिकार सीमा को निर्धारित करता है। यह नागरिकों को बताता है कि प्रशासकों द्वरा उनके अधिकारों के कुचले जाने पे अपनी रक्षा के लिए उन्हें क्या कदम उठाने है। फ्रांस की न्याय व्यवस्था में राजकीय कर्मचारी के अपने अधिकार के उल्लंघन या मनमाने उपयोग पर उसके खिलाफ कारवाही साधारण न्यायलय में न होकर प्रशासनिक कानून के अंतर्गत प्रशासनिक न्यायालयों में होती है।

7. अन्तर्राष्ट्रीय कानून-

ऐसे नियम जो सभ्य राष्ट्र के समुदाय के पारस्परिक व्यवहारों में उनके आचरण का निर्धारण करते है अन्तर्राष्ट्रीय कानून कहलाते हैं। उन सामान्य सिध्दांतों और विशिष्ट नियमों का समुच्चय जिन्हें अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के सदस्य परस्पर संबंधों का निर्वाह करते समय सर्वत्र मान्यता देते हैं। इनमें मुख्यत: शांति के कानून,युद्ध के कानून और तटस्थता के कानून आते हैं।

मेक्ल्वर ने कानून को दो भागों में बांटा है

राष्ट्रीय कानून और अन्तराष्ट्रीय कानून

1.राष्ट्रीय कानून – राष्ट्रीय कानून को संवैधानिक कानून और साधारण कानून में उपविभाजित किया है। साधारण कानून व्यक्तियों से सम्बंधित कानून है जो दो तरह के हो सकते है – लोक कानून और व्यक्तिगत कानून। लोक कानून राज्य व व्यक्ति के संबंधों को नियंत्रित करता है। व्यक्तिगत कानून व्यक्तियों के आपसी सम्बन्ध से सम्बंधित है। लोक कानून को प्रशासकीय कानून व साधारण कानून में बांटा जा सकता है। प्रशासकीय कानून राज्य व अधिकारीयों से सम्बंधित है। साधारण कानून नागरिकों और राज्य के सम्बन्ध को सम्बंधित है। संवैधानिक कानून राज्य के ढाँचे , सरकार की प्रकृति और क्षेत्र से सम्बंधित है।

2.अन्तर्राष्ट्रीय कानून – शांति या युद्ध के समय एक राज्य का दूसरे राज्य के बीच सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों पर आधारित होता है ।विश्व के स्वतंत्र राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्ध को निर्धारित करने वाले कानूनों को अन्तर्राष्ट्रीय कानून कहते हैं। ओपेन्हेम के अनुसार " अन्तर्राष्ट्रीय विधि प्रयासों और परम्पराओं का वह समूह है जो सभ्य राज्यों द्वारा अपने आपसी संबद्ध में क़ानूनी तौर पर बाध्य समझा जाता है।

5.6 कानून की प्रकृति की विभिन्न व्याख्याएं

अलग-अलग विचार सम्प्रदायों में कानून की प्रकृति के विषय में अपने विचार दिए है। पश्चिमी परंपरा के अंतर्गत चार विचार मुख्य है जो निम्नलिखित हैं –

1 प्राकृतिक – प्रकृतिक कानून अच्छे व्यव्हार के उन नियमों का समुच्य है जो विधानमंडल द्वारा नही बना है न ही किसी किताब में लिखा गया है यह सीधे प्रकृति से प्राप्त होता है। मनुष्य अपनी तर्क बुद्धि व विवेक से इसका ज्ञान लेता है। इस संकल्पना को सोफिस्ट, प्लेटो और अरस्तू ने अपने चितन में लिया। मध्य युग में एक्विनास ने प्राकृतिक कानूनों मान्यता दी। ह्यूगो ग्रोश्यस ने प्राक्रतिक कानून का स्रोत मनुष्य की विवेकशील प्रकृति को माना। सामाजिक समझौतावादी विचारकों के अनुसार मनुष्य प्राकृतिक दशा में जिस सूझ बूझ से काम लेते है, वह प्राकृतिक कानून है। आज के समय में प्राकृतिक कानून को मानव- अधिकारों का आधार माना जाता है।

2. विश्लेषणात्मक – यह विचार 19 वीं शताब्दी में आंग्ल-अमेरिकी क़ानूनी परंपरा से आया। इसके अनुसार किसी प्रभुत्वशाली प्रभुसत्ता की इच्छा ही कानून है। जिसका पालन उसके अधिकार क्षेत्र में आने वाले सभी लोगों द्वारा किया जाता है, उलंघन करने वाले को दंड दिया जाता है। अस्टिन को विश्लेष्णात्मक न्यायशास्त्र का प्रवर्तक माना जाता है।

3.ऐतिहासिक न्यायशास्त्र- इस विचार के अनुसार कानून का विकास उन सामाजिक शक्तियों की देन है जो अतीत में सक्रीय रही हैं। सेवाइन के अनुसार कानून किसी जनसमुदाय की चेतना की अभिव्यक्ति है, इसमें किसी जाति एवं संस्कृति की विशेषताओं की झलक मिलती है। हेनरी मेन ने सेवाइन की बात का खंडन करते हुए प्रदर्शित किया है कि कानून का विकास विश्वजनीन चेतना की अभिव्यक्ति है। हेनरी मेन ने अलग अलग समाजों के क़ानूनी संस्थाओं का अध्ययन किया और इस निष्कर्ष में पंहुचा कि प्रगतिशील समाज 'स्थिर स्थिति' से अनुबंध की ओर बढते हैं। कानून स्थिर नही होते जैसे-जैसे सामाजिक संस्थाओं के स्वरूप और सामाजिक सजगता के स्टार में परिवर्तन होता है, कानून की विषय-वस्तु में भी बदलाव आता है।

4.समाजशास्त्रीय न्यायशास्त्र- यह विश्लेष्णात्मक न्यायशास्त्र की मान्यताओं के विपरीत है। इसके अनुसार राज्य केवल नियमों को क़ानूनी मान्यता देने का साधन है जो सामाजिक हितों की देखरेख के लिए समाज में पहले से प्रचलित होते हैं। समाजशास्त्रीय न्यायशास्त्र के अनुसार कानून राज्य से पहले और उच्च है। समाजशास्त्रीय न्यायशास्त्र के अंतर्गत भविष्य को भयं में रखकर कानून की सार्थकता खोजी जानी चहिये।

5.7 कानून का शासन

लोकतंत्र समानता के सिद्धांत पर आधारित है। इसका अर्थ है कि सभी कानून के समक्ष समान हैं और किसी के साथ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जायेगा। इस व्यवस्था के अंतर्गत सभी लोग एक कानून के अंतर्गत शासित होते है इस प्रकार के नियम और कानूनों को कानून का शासन कहा जाता है। कानून का शासन ब्रिटिश संविधान की विशेषता है। ए.वी. डाइसी ने अपनी पुस्तक इंट्रोडक्शन टू द स्टडी आफ़ लॉ आफ़ द कांस्टीट्यूशन' के अंतर्गत इंग्लैंड के संविधान को 'विधि के शासन' की बात की। इग्लेंड में अलिखित संविधान प्रचलित है, इस लिए वहां नागरिकों के अधिकारों की संवैधानिक गारंटी की कोई व्यवस्था नही है , वहाँ विधि का शासन इसकी कमी पूरी कर देता है। डाइसी के अनुसार, विधि के शासन में तीन अर्थ निहित थे :

1. यहाँ कानून का प्रयोग करते समय निरंकुश शक्ति के प्रयोग की कोई गुनजाइस नहीं है। अत: कानून का उलंघन करने पर ही किसी नागरिक को दंड दिया जा सकता है, अन्य किसी आधार पर नहीं।
2. विधि का शासन सभी नागरिकों को कानून के समक्ष समानता प्रदान करता है। इसके अंतर्गत साधारण नागरिकों की तरह सरकारी अधिकारीयों और उनकी करवाई साधारण कानून से बंधी होती है जो साधारण न्यायलय द्वारा लागू किया जाता है। सरकारी अधिकारीयों या सरकारी कारवाही को साधारण कानून और न्याय व्यवस्था से किसी तरह की छुट नही होती है।
3. इंग्लैंड में विधि का शासन यह संकेत देता है कि यहाँ नागरिकों के अधिकार संविधान द्वारा सुरक्षित नहीं किये गये है बल्कि देश के साधारण कानून में निहित उपचारों के द्वारा उन्हें जो लाभ और स्वतंत्रताए प्रदान की गयी हैं, वही संविधान का आधार है।

   डाइसी के अनुसार कानून के समक्ष समानता ब्रिटिश संविधान का मूल सिध्दांत है। इसका मतलब है कि नागरिक के सभी वर्ग देश के साधारण कानून से बधे होंगे।

5.8 कानून और नैतिकता

कानून और नैतिकता दोनों व्यक्ति के जीवन / व्यव्हार को निर्धारित करते है। नैतिकता की भावना से प्रेरित होकर ही व्यक्ति दूसरो के प्रति अच्छा व्यवहार करता हैं , वहीँ कानून भी दूसरों के प्रति अच्छा व्यवहार करने का निर्देश देता है। इसलिए आदर्श कानून व्यक्ति की नैतिक मान्यताओं के अनुरूप होना चाहिए। हमारी नैतिकता की भावना हमें कानून का पालन करने की प्रेरणा देती है। आदर्श कानून सबके कल्याण की इच्छा को व्यक्त करता है। आदर्श कानून सबके कल्याण की इच्छा को व्यक्त करता है। कई बार हमारे सामने ऐसे कानून से भी हो सकता है जो स्वयं अन्यायपूर्ण हो ।ऐसी स्थिति में हमारी नैतिक भावना हमें अनुचित कानून का विरोध करने की प्रेरणा देती है। जैसे मार्टिन लूथर किंग ने कानून के क्षेत्र में अश्वेतों के प्रति भेदभाव का जमकर विरोध किया।

अभ्यास प्रश्न

1. किसके अनुसार कानून संप्रभु का शासन है ?
2. कानून शब्द टयूटनिक मूल के किस शब्द से बना है ?
3. विधि निर्माण का कार्य सरकार के किस अंग द्वारा किया जाता है?
4. मेक्ल्वर ने कानून को कितने भागों में बांटा है ?

5.9 सारांश

कानून का लक्ष नागरिकों के सामाजिक जीवन को अधिक उन्नत और उत्कृष्ट बनाना है। कानून समाज के प्रचलित मूल्यों और मान्यताओं का प्रतिनिधित्व करता है। कानून को सामाजिक परिवर्तन का सशक्त मध्यम बनाने के लिए जरुरी है कि कानून लोक मत पर आधारित हों। इस तरह लोकतंत्र को प्राथमिकता दी जाये और इसके साथ- साथ राज्य को शिक्षा, स्वस्थ , रोजगार आदि की व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। क्योंकि इसके आभाव में लोग सशक्त लोकमत का निर्माण नहीं कर पाएंगे।

5.10 शब्दावली

साम्या - जब कानून हो पर न्यायाधीश को यह लगे कि संबद्ध पक्ष को सहायता (रिलीफ) देना न्याय होगा तो न्यायाधीश साम्या के सिध्दांत का प्रयोग करते हुए ऐसी सहायता की व्यवस्था करता है।

अध्यादेश- ऐसे आदेश होते है जो असाधारण परिस्थितियों में राज्य की कार्यपालिका के प्रधान द्वारा जारी किये जाते हैं

5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. आस्टिन 2. लैग 3. विधायिका 4. दो

5.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.डॉ0वी0एल साह व डॉ नीता बोरा, राजनीतिक विज्ञान का परिचय, अंकित प्रकाशन हल्द्वानी।

2.ओम प्रकाश गाबा,राजनीतिक सिद्वान्त की रूपरेखा, मयूर पेपर बैक्स नोएडा।

3.डॉ पुष्पेश पाण्डे व डॉ विजय प्रकाश पन्त, राजनीतिक सिद्वान्त,जगदम्बा पब्लिसिंग कम्पनी नई दिल्ली।

5.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वीरकेश्वर प्रसाद -राजनीति शास्त्र के मूल सिद्धान्त, ज्ञानदा पब्लिकेशन, नयी दिल्ली

2. डी0डी0 राफेल - राजनीतिक दर्शन की समस्यायें, मैकमिलन लन्दन

3. ओम प्रकाश गाबा,राजनीतिक सिद्वान्त की रूपरेखा, मयूर पेपर बैक्स नोएडा।

5.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कानून से आप क्या समझते हैं ? इसके स्रोतों का वर्णन कीजिये।

2. कानून की विभिन्न परिभाषाओं के साथ कानून के प्रकारों के चर्चा कीजिये।

इकाई 6 अधिकार

6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्देश्य

6.2 अधिकार: अर्थ, परिभाषा

6.3 अधिकारों का वर्गीकरण

6.4 अधिकारों के विभिन्न सिद्धांत

6.5 सारांश

6.6 शब्दावली

6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.9 सहायक उपयोगी सामग्री

6.10 निबधात्मक प्रश्न

6.0 प्रस्तावना

अधिकार सामाजिक जीवन की वह परिस्थितियां हैं जिनके आभाव में कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता"। लोकतान्त्रिक देशों में नागरिकों के मौलिक अधिकारों को सूचीबद्ध कर दिया जाता है। संविधान द्वारा प्रदान किये गये अधिकारों की सूची को अधिकारों का घोषणा पत्र कहा जाता है। यह घोषणा पत्र अधिकारों के उल्लंघन होने पर उपचार भी सुनिश्चित करता है । भारत के संविधान निर्माताओं ने हर व्यक्ति के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय उपलब्ध कराने के लिए मूल अधिकारों का प्रावधान किया।

गुणवत्ता एक मूलभूत सिद्धांत है जो आधुनिक समाजों और राजनीतिक विचारों के केंद्र में है। यह इस विचार का प्रतीक है कि सभी व्यक्तियों के साथ, उनकी पृष्ठभूमि, पहचान या विशेषताओं की परवाह किए बिना, भेदभाव रहित और निष्पक्षता से व्यवहार किया जाना चाहिए। यह अवधारणा लोगों के बीच भेदभाव, विशेषाधिकार और अन्यायपूर्ण असमानताओं को खत्म करने, एक ऐसे समाज को बढ़ावा देने का प्रयास करती है जहां सभी को अवसरों, अधिकारों और संसाधनों तक समान पहुंच प्राप्त हो।

समानता की धारणा पूरे इतिहास में सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों के पीछे एक प्रेरक शक्ति रही है। नागरिक अधिकारों और लैंगिक समानता की वकालत से लेकर आर्थिक असमानताओं और सामाजिक पदानुक्रमों को चुनौती देने तक, समानता की खोज प्रगतिशील परिवर्तन को आकार देने और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने में सहायक रही है।

समानता के इस परिचयात्मक अन्वेषण में, हम इसके विभिन्न आयामों, जैसे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और कानूनी समानता, पर गहराई से विचार करेंगे। हम समानता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता और योग्यता जैसे अन्य मूल्यों के बीच तनाव की भी जांच करेंगे। समानता की जटिलताओं और निहितार्थों को समझकर, हम सभी के लिए अधिक समावेशी और न्यायपूर्ण समाज बनाने की दिशा में प्रयास कर सकते हैं।

6.1 उद्देश्य

1. अधिकार के अर्थ और परिभाषा को जान पायेंगें।

2. अधिकारों के वर्गीकरण का अध्ययन कर पायेंगें।

3. भारतीय संविधान ने हमें कितने मौलिक अधिकार दिए हैं ।

4. मौलिक अधिकार क्यूँ आवश्यक हैं।

5. मौलिक अधिकारों को कैसे सुरक्षित किया जा सकता है ।

6.2 अधिकार: अर्थ, परिभाषा

मूल अधिकार हमारे नैसिर्गिक अधिकार हैं ,जो कि एक मानव जीवन को संरक्षित, सवंर्धित तथा विकसित होने के अवसर प्रदान करते हैं। यदि कोई भी समाज अपने नैतिक व अवधराणात्मक मूल्यों के स्तर पर इनके लिए तैयार नहीं होता है तो कानूनी कितना भी कठोरता हो उनका उपयोग सम्भव नहीं होगा। मूल अधिकार किसी भी व्यक्ति की स्वतन्त्रता, उसके इन्सान होने की रक्षा के लिए बने हैं और इसीलिए समाज में प्रत्येक व्यक्ति के पास यह मूल्य होने चाहिए कि वह सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय के लिए इनका उपयोग अपने हित में कर सके और दूसरे व्यक्ति की स्वन्तन्त्रता तथा अधिकारों में बाधा न पहुचाये।

"अधिकार" की अवधारणा एक नैतिक या कानूनी अधिकार या दावे को संदर्भित करती है जो किसी व्यक्ति के पास है, जो उन्हें विशिष्ट तरीके से कार्य करने या व्यवहार करने की स्वतंत्रता देता है। अधिकार मनुष्यों में अंतर्निहित हैं और अक्सर उनकी गरिमा, स्वायत्तता और कल्याण सुनिश्चित करने के लिए मौलिक माने जाते हैं।

प्रकृति के द्वारा मनुष्य को विभिन्न प्रकार की शक्तियाँ प्रदान की गयी है, लेकिन इन शक्तियों का स्वयं अपने ओर समाज के हित के रूप में उचित प्रयोग करने के लिए कुछ बाहरी सुविधाओं की आवश्यकता होती है। राज्य का सर्वोत्तम लक्ष्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास है अतः राज्य के द्वारा व्यक्ति को प्रदान की जाने वाली इन बाहरी सुविधाओं का नाम ही अधिकार है।

अधिकार राज्य के अंतर्गत व्यक्ति को प्राप्त होने वाली ऐसी अनुकूल परिस्थितियां और अवसर हैं जिनसे आत्म-विकास में सहायता मिलती है।

अधिकारों की अवधारणा को अक्सर "नकारात्मक" और "सकारात्मक" अधिकारों के संदर्भ में तैयार किया जाता है। नकारात्मक अधिकार हस्तक्षेप या हानि से मुक्ति को संदर्भित करते हैं, जिसका अर्थ है कि दूसरों को इन अधिकारों में बाधा या उल्लंघन नहीं करना चाहिए। दूसरी ओर, सकारात्मक अधिकारों का तात्पर्य यह है कि उन अधिकारों को पूरा करने के लिए दूसरों को कुछ सामान या सेवाएँ प्रदान करने का दायित्व है।

लोकतांत्रिक समाजों में, अधिकारों की सुरक्षा और संवर्धन आमतौर पर कानूनी ढांचे, संविधान और अंतर्राष्ट्रीय संधियों के माध्यम से सुरक्षित किया जाता है। मानवीय गरिमा को बनाए रखने, सामाजिक सद्भाव को बढ़ावा देने और एक न्यायसंगत और न्यायसंगत समाज को प्राप्त करने के लिए अधिकारों का सम्मान आवश्यक माना जाता है।

प्रमुख विद्वानों द्वारा अधिकार की निम्नलिखित शब्दों में परिभाषाएं की गयी हैं:-

बोसांके के अनुसार, "अधिकार वह मांग है जिसे समाज स्वीकार करता और राज्य लागू करता है।"

लास्की के अनुसार, "अधिकार सामाजिक जीवन की वे परिस्थितियां है जिनके अभाव में सामान्यता कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर पाता है।"

बार्कर क अनुसार " अधिकार न्याय की उस सामान्य व्यवस्था का परिणाम हैं जिस पर राज्य के कानून आधारित है।"

अधिकार सामान्यतया व्यक्ति की उन मांगों में से है जिन्हें समाज स्वीकार करता है व राज्य संरक्षित करता है। वे अधिकार जो व्यक्ति के जीवन के लिए मौलिक तथा अनिवार्य होने के कारण संविधान द्वारा नागरिकों को प्रदान किये जाते हैं और जिन अधिकारों में राज्य द्वारा भी हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है, मूल अधिकार कहलाते हैं। मूल अधिकार न्याय योग्य होते हैं अर्थात न्यायपालिका इन अधिकारों की रक्षा के लिए सभी आवश्यक कदम उठा सकती है।

अधिकार व कर्तव्य आपस में नजदीकी से जुड़े हुए हैं मतलब हर अधिकार के साथ कर्तव्य भी होता है।अधिकार को क़ानूनी मंजूरी के साथ समाज की मंजूरी भी जरुरी है। पहले समाज में आम नागरिक के अधिकारों को कोई मान्यता नही दी जाती थी। अधिकार आधुनिक युग की देन हैं । अधिकारों की प्राप्ति के लिए लम्बा संघर्ष करना पड़ा है । फ्रांस की क्रांति, अमेरिकी क्रांति, के बाद अधिकारों को व्यापक रूप में स्वीकृत किया गया। सबसे पहले अमेरिकी संविधान में मूल अधिकारों को स्थान मिला। रुसी क्रांति ने सामाजिक- आर्थिक अधिकारों को बढ़ावा दिया।

अधिकारों की प्रकृति

1 अधिकार किसी व्यक्ति के भले के लिए आवश्यक हैं। अधिकार एक निष्पक्ष इच्छा है जो स्वार्थरहित होता है। अधिकार वह हैं जो हम किसी से उम्मीद करते हैं और लोग जो हमसे चाहते हैं अधिकार में समाज कल्याण की भावना छुपी होती है।व्यक्ति की निष्पक्ष इच्छा प्रत्येक के हित के लिए होती है।

2 अधिकारों को केवल समाज में ही प्रयोग किया जा सकता है।

3 अधिकार राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त दावे हैं।

4 हर अधिकार के पीछे कर्तव्य छिपा होता है। अधिकार और कर्तव्य एक सिक्के के दो पहलुओं की तरह हैं।

5 कोई भी अधिकार असीमित नहीं होता उसकी अपनी सीमायें होती हैं।

6 समय के साथ अधिकारों में भी परिवर्तन आता है।

7 लोकतंत्र अधिकारों को कायम रखता है। लोकतंत्र में ही अधिकारों का आनंद उठाया जा सकता है ।

6.3 अधिकारों का वर्गीकरण

साधारणतया अधिकार दो प्रकार के होते हैं - **(1) नैतिक अधिकार और (2) कानूनी अधिकार**

(1) नैतिक अधिकार:- नैतिक अधिकार वे अधिकार होते हैं जिनका सम्बन्ध मानव के नैतिक आचरण से होता है। अनेक विचारकों के द्वारा इन्हें अधिकार के रूप में ही स्वीकार नहीं किया जाता है, क्योंकि वे अधिकार राज्य द्वारा रक्षित नहीं होते है। इन्हें धर्मशास्त्र, जनमत या आत्मिक चेतना द्वारा स्वीकृत किया जाता है और राज्य के कानूनों से इनका कोई सम्बन्ध नहीं होता।

(2) कानूनी अधिकार:- ये वे अधिकार है जिनकी व्यवस्था राज्य द्वारा की जाती है और जिनका उल्लंघन कानून से दण्डनीय होता है। कानून का संरक्षण प्राप्त होने के कारण इन अधिकारों को लागू करने के लिए राज्य द्वारा आवश्यक कार्यवाही की जाती है।

कानूनी अधिकार के दो भेद किये जा सकते है:

1.सामाजिक या नागरिक अधिकार,

2. राजैनतिक अधिकार

1.सामाजिक या नागरिक अधिकार:- प्रमुख सामाजिक या नागरिक अधिकार निम्नलिखित हैं –

नागरिक अधिकार वे आधारभूत विधायी अधिकार हैं जो किसी उदार लोकतान्त्रिक राज्य में समान नागरिकता की स्थिति को सुरक्षित रखने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के पास होने चाहिए। 1950 और 1960 के दशक में "नागरिक अधिकार" नामक शब्दावली अफ़्रीकी-अमेरिकियों की समानता के लिए किये जाने वाले संघर्ष से जुडी है जिनका उद्देश्य समान नागरिकता की यह स्थिति प्राप्त करना था.

1.समानता का अधिकार:- समानता का अधिकार एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अधिकार है और जिसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक क्षेत्र में व्यक्ति को व्यक्ति होने के नाते सम्मान और महत्व प्राप्त होना चाहिए और जाति धर्म व आर्थिक स्थिति के भेद के बिना सभी व्यक्तियों को अपने जीवन का विकास करने के लिए सुविधाऐं प्राप्त होनी चाहिए। समानता का अधिकार प्रजातंत्र की आत्मा है और इसके अग्र भेद हैं:-

a. राजनीतिक समानता का अधिकार:- इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यतानुसार बिना किसी पक्षपात के देश के शासन में भाग लेने का अवसर प्राप्त होना चाहिए।

b. सामाजिक समानता का अधिकार:- इसका तात्पर्य यह है कि समाज में धर्म, जाति, भाषा, सम्पत्ति या लिंग के आधर पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए।

राज्य के प्रति विद्रोह व्यक्ति का नैतिक अधिकार ही नहीं वरन एक नैतिक कर्तव्य भी हो जाता है जैसा गांधी जी कहते है ''व्यक्ति का सर्वोच्च कर्तव्य अपनी अन्तरात्म के प्रति होता है।'' अतः विरोध किया जा सकता है।

6.4 अधिकारों के सिद्धांत

प्राकृतिक अधिकार का सिद्धांत –

कुछ अधिकार राज्य की उत्पत्ति से पहले से मौजूद थे इन्हें प्रकृतिक अधिकार कहा जाता है। इन अधिकारों की सुरक्षा के लिए राज्य का जन्म हुआ। सामाजिक समझौतावादी विचारकों ने इस बात को रखा। जॉन लॉक ने जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति के अधिकार को प्रकृतिक अधिकार में रखा। प्राकर्तिक अधिकारों की संकल्पना से क्रांतियां हुई जैसे अमरीकी स्वतंत्रता घोषणा पत्र में कहा गया कि मनुष्य जन्म से स्वतंत्र है ।जीवन, स्वतंत्रता और सुख की साधना के अधिकार से मनुष्य को वंचित नही किया जा सकता है। फ्रांस की क्रांति की घोषणा में स्वतंत्रता, समानता, सुरक्षा और सम्पति को संपति को मनुष्य के प्रमुख प्रकृतिक अधिकारों में रखे गये।

क़ानूनी अधिकारों का सिद्धांत –

इस सिद्धांत के अनुसार अधिकार राज्य की देन हैं। जब तक राज्य किसी अधिकार को मान्यता नहीं देता है तब तक उसे किसी भी अर्थ में अधिकार नहीं माना जा सकता। बेन्थम ने प्राकृतिक अधिकारों को नकारते हुए विधि के शासन का समर्थन किया। क़ानूनी अधिकार सिद्धांत के अनुसार अधिकार राज्य द्वारा प्रदत्त अधिकार , अधिकार कहलाते हैं । हर देश में अधिकार अलग अलग तरह के होते है।

ऐतिहासिक सिद्धांत –

इस सिद्धांत के अनुसार मानव को अधिकार इतिहास परंपरा या मान्यता से प्राप्त हैं, न कि राज्य या समाज से। एडमंद बर्क ने इस सिद्धांत का समर्थन किया कि इतिहास अधिकारों का निर्माण करता है। लम्बे समय तक विद्यमान परम्पराएँ ही अधिकारों का रूप धारण कर लेते है।

समाजकल्याण का सिद्धांत -

इस सिद्धांत के अनुसार अधिअक्र समाज कल्याण के लिए ही होते हैं। जो समाज के लिए उपयोगी है उसे अधिकार मानना चाहिए। उपयोगितावाद ने इस अधिकार के सिद्धांत को समर्थन दिया उनके मत में अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख अधिकार का अधर होना चाहिए। जो अधिकार व्यक्ति को मिलते है उनकी सामाजिक उपयोगिता है जैसे व्यक्ति को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया है लेकिन समज के हित में इस पर कई बार प्रतिबन्ध भी लगा दिया जाता है।

लोकतंत्रीय सिद्धांत –

इस व्यवस्था में नकारात्मक और सकारात्मक अधिकार एक- साथ प्रदान किये जा सकें। लास्की के अनुसार, किसी भी राज्य की पहचान उन अधिकारों से होती है जिनकी वह रक्षा करता है। लास्की लोकतंत्रीय सिद्धांत के समर्थक हैं इन्होने उदारवाद से जुड़े राजनीतिक अधिकारों के साथ-साथ समाजवाद से जुड़े हुए आर्थिक अधिकारों की भी रक्षा पर बल दिया है। उसने माना कि राज्य को व्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ आर्थिक सुरक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए। ग्रीन की तरह लास्की ने तर्क दिया कि अधिकार राज्य की देन नहीं हैं बल्कि उनका स्थान राज्य की सत्ता से ऊँचा है। लास्की ने कल्याणकारी राज्य के विचार को बढ़ावा दिया। कुछ पुचिवादी प्रणाली को खत्म करने की जगह उसमें संशोधन करने के सुझाव दिए जिससे इस प्रणाली में जनसाधारण के दमन और उत्पीडन की जगह स्वतंत्रता और सुरक्षा एक-साथ प्रदान कर सके। लास्की का मानना है कि उदार लोकतंत्र जनसाधारण के व्यापक कल्याण का साधन बन सकता है।

मार्क्सवादी सिद्धांत –

मार्क्सवाद के अनुसार, किसी भी राज्य में, किसी भी युग में प्रचलित अधिकार प्रभुत्वशाली वर्ग के अधिकार होते हैं। इस लिए कामगार वर्ग के अधिकारों की सुरक्षा के लिए यह आवश्यक है कि यह वर्ग पूंजीपति वर्ग को परे हटाकर स्वयं सत्ता संभाल ले। अधिकार राज्य के वर्ग चरित्र के साथ जुड़े रहते है, इसलिए पूंजीवादी और समाजवादी व्यवस्थाओं के अंतर्गत अधिकारों का स्वरुप भिन्न-भिन्न होता है। पूंजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत कानून की दृष्टि से सब नागरिकों के सामान अधिकार स्वीकार किये जाते है परन्तु वास्तविकता स्तर पर सारे अधिकार पूंजीपति वर्ग के अधिकार होते हैं।

मार्क्सवाद के अनुसार, समाजवादी स्थिति है जब कामगार वर्ग पूंजीपतियों को हटाकर उत्पादन के प्रमुख साधनों पर सामाजिक स्वामित्व स्थापित कर देता है। पहले सर्वहारा का अधिनायकतंत्र स्थापित किया जाता है, आगे चलके राज्य लुप्त हो जाता है और वर्गविहीन तथा राज्यविहीन समाज अस्तित्व में आ जाता है। जिसे साम्यवाद कहा जाता है। समाजवाद में वर्ग-विभाजन बना रहता है परन्तु कामगार वर्ग प्रभुत्वशाली बना रहता है इसी लिए उसे वास्तविक अधिकार प्राप्त होते है। माक्सवादी चिंतन के प्रभाव से जब रूस में 1917 की क्रांति के बाद जो समाजवादी व्यवस्था स्थापित की गई, उसमें नागरिकों की आर्थिक सुरक्षा और बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति पर विशेष दिया गया।

अभ्यास प्रश्न --

1. अधिकार वह मांग है जिसे समाज स्वीकार करता और राज्य लागू करता है।"किसका कथन है?

2. अधिकार सामाजिक जीवन की वे परिस्थितियां है जिनके अभाव में सामान्यता कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर पाता है। किसका कथन है ?

3. भारतीय संविधान के किस भाग में अधिकारों का वर्णन किया गया है?

4. अधिकारों के किस सिद्धांत के अनुसार अधिकार राज्य की उत्पत्ति से पहले से मौजूद थे?

6.5 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि समानता की अवधारणा प्रगतिशील और न्यायपूर्ण समाज की आधारशिला के रूप में खड़ी है। यह इस मौलिक विश्वास का प्रतीक है कि प्रत्येक व्यक्ति के साथ, उनकी पृष्ठभूमि, जाति, लिंग, धर्म या सामाजिक-आर्थिक स्थिति की परवाह किए बिना, निष्पक्षता और सम्मान के साथ व्यवहार किया जाना चाहिए। समानता केवल एक ऊँचा आदर्श नहीं है; यह सामाजिक एकता, आर्थिक समृद्धि और राजनीतिक स्थिरता के पीछे एक प्रेरक शक्ति है। समानता के नजरिए से, समाजों ने भेदभावपूर्ण प्रथाओं को खत्म करने और यह सुनिश्चित करने में उल्लेखनीय प्रगति देखी है कि सभी व्यक्तियों को अवसरों और संसाधनों तक समान पहुंच मिले। यह परिवर्तनकारी आंदोलनों के लिए उत्प्रेरक रहा है जिसने बाधाओं को तोड़ा है और नागरिक अधिकारों, लैंगिक समानता और सामाजिक न्याय को आगे बढ़ाया है।

हालाँकि, पूर्ण समानता प्राप्त करने की दिशा में यात्रा जारी है और जटिल है। चुनौतियाँ बनी हुई हैं, और समानता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता और योग्यता जैसे अन्य सामाजिक मूल्यों के बीच सही संतुलन बनाने की खोज बहस का विषय बनी हुई है। वास्तव में समानता को बढ़ावा देने के लिए सरकारों, संस्थानों और व्यक्तियों के सामूहिक प्रयास की आवश्यकता है। नीतिगत उपाय जो प्रणालीगत असमानताओं को संबोधित करते हैं, शिक्षा जो सहानुभूति और समझ को बढ़ावा देती है, और निष्पक्षता के प्रति अटूट प्रतिबद्धता एक अधिक न्यायसंगत दुनिया के निर्माण में महत्वपूर्ण घटक हैं।

जैसे-जैसे हम समानता की अवधारणा का पता लगाना और उसका समर्थन करना जारी रखते हैं, हमें याद रखना चाहिए कि यह सभी व्यक्तियों के साथ एक समान व्यवहार के बारे में नहीं है, बल्कि यह सुनिश्चित करते हुए विविधता को पहचानने और अपनाने के बारे में है कि कोई भी पीछे न रह जाए। समानता को एक मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में

अपनाकर, हम ऐसे समाज बनाने की आकांक्षा कर सकते हैं जो मानवीय मतभेदों की समृद्धि का जश्न मनाएं और यह गारंटी दें कि प्रत्येक व्यक्ति के अंतर्निहित मूल्य को पहचाना और सम्मानित किया जाए। ऐसा करके, हम एक ऐसे भविष्य की ओर एक महत्वपूर्ण कदम उठाते हैं जो मानवता के सच्चे सार का प्रतीक है और आने वाली पीढ़ियों के लिए एक बेहतर दुनिया को आकार देने में समानता की स्थायी शक्ति के प्रमाण के रूप में खड़ा है।

6.6 शब्दावली

राजनीतिक समानता --राजनीतिक समानता का अभिप्राय सभी व्यक्तियों को समान राजनीतिक अधिकार एवं अवसर प्राप्त होते है

प्राकृतिक समानता:- प्राकृतिक समातना के प्रतिपादक इस बात पर बल देते हैं कि प्रकृति ने मनुष्यों को समान बनाया है और सभी मनुष्य आधारभूत रूप में बराबर है।

कानूनी अधिकार:- ये वे अधिकार है जिनकी व्यवस्था राज्य द्वारा की जाती है और जिनका उल्लंघन कानून से दण्डनीय होता है।

6.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.बोसांके 2.लास्की 3. भाग 3 4. प्राकृतिक सिद्धांत

6.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 गार्नर - पॉलिटिकल साइंस एण्ड गवर्नमेंट

2.ऑस्टिन- लेक्चर्सऑन जुरिसप्रडेंस

3.गेटिल-पोलिटिकल साइंस

4.डॉ. पुखराज जैन -- राजनीतिक सिद्धान्त

5.एस.सी. सिंघल--- राजनीतिक सिद्धान्त

6.ओ.पी.गाबा - राजनीतिक सिद्धान्त

7.जे.सी.जौहरी -- राजनीतिक सिद्धान्त

8.डा.दुर्गा दास बसु, भारत का संविधान

9. भारत का संविधान, डा. बालेन्द्र सिंह

10. भारत का संविधान , डा. पी.डी. मैथ्यू

6.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.वीरकेश्वर प्रसाद -राजनीति शास्त्र के मूल सिद्धान्त, ज्ञानदा पब्लिकेशन, नयी दिल्ली

2 .डी0डी0 राफेल - राजनीतिक दर्शन की समस्यायें, मैकमिलन लन्दन

6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सामाजिक या नागरिक आधिकारों की व्याख्या कीजिये।

2. राजनैतिक अधिकारों की विवेचना कीजिये।

3.अधिकार पर एक निबंध लिखिए।

4. कल्याणकारी राज्य की संकल्पना के अंतर्गत अधिकारों के मुख्य-मुख्य सिद्धांतों का वर्णन कीजिये।

इकाई 7 सम्प्रभुता की संकल्पना

7.0 प्रस्तावना

7.1 उद्देश्य

7.2 सम्प्रभुता का अर्थ, परिभाषाएं

7.3 संम्प्रभुता का विकास

7.4 संम्प्रभुता के पहलू

7.4.1 आन्तरिक सम्प्रभुता

7.4.2 वाह्य सम्प्रभुता

7.5 सम्प्रभुता के लक्षण

7.6 सम्प्रभुता के विविध रूप

7.7 सारांश

7.8 शब्दावली

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

7.12 निबन्धात्मक प्रश्न

7.0 प्रस्तावना

आमतौर पर यह माना जाता है कि राज्य लोगो को शान्ति व सद्जीवन प्रदान करता है। जिससे लोग सुख व समृद्वि प्राप्त कर सकें। इसके लिए प्रत्येक राज्य का अपना एक संविधान होता है। जिसमें नागरिकों के अधिकारों के साथ-साथ राज्य के कर्तव्यों का उल्लेख होता है। जिसका सम्मान किया जाना सरकार के लिए आवष्यक होता है। यदि राज्य के प्राधिकारी नागरिकों के अधिकारो का अतिक्रमण करते है तो नागरिक उनकी सुरक्षा के लिए न्यायालय की शरण लेता है और न्यायालय अधिकारों की रक्षा करता है। ऐसा इसलिए क्योंकि हमें ज्ञात है कि यह हमारा मौलिक अधिकार है। जिसके कारण सरकार हमारे हित में कार्य करने के लिए बाध्य है। प्रष्न यह उठता है कि राज्य किस प्राधिकार से ऐसा करता है ? वह शक्ति क्या है ? उसकी प्रकृति क्या है ? उसके आधार क्या है ? वह वर्तमान विवादग्रस्त समाजिक समस्याओं का समाधान कैसे करता है ? क्या ये सारी शक्तियां राज्य के पास होनी चाहिए ? इन सभी समस्याओं ;प्रष्नोद्ध का समाधान तब तक नही हो सकता जब तक कि राज्य की सर्वोच्चता ;सर्वोच्च शक्तिद्ध को स्वीकार न कर लिया जाय। राज्य की यह सर्वोच्च शक्ति ही आधुनिक युग में सम्प्रभुता के नाम से सम्बोधित की जाती है। सम्प्रभुता के कारण ही राज्य कानूनों का निर्माण व उनका पालन करवाता है इसी के बल वह सुकरात को जहर पीने के लिए बाध्य कर सकता है तथा कानूनो का पालन न करने वालों को वह जेल के मजबूत सीखचों में बन्द करके अपनी सम्प्रभुता का एहसास करा सकता है।

आधुनिक युग में राज्य के चार आवष्यक तत्व माने जातें है निष्चित - भूभाग, जनसंख्या ,सरकार और सम्प्रभुता। इनमें सम्प्रभुता सबसे महत्वपूर्ण है। जिसे राज्य शक्ति का प्राण या आत्मा कहा जा सकता है। जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर का अस्तित्व सम्भव नही होता है उसी प्रकार सम्प्रभुता के बिना राज्य के अस्तित्व की कल्पना नही की जा सकती है। सी0एल0 ओएसे ; ने लिखा है कि ‘‘प्रभुसत्ता कों राज्य से कदापि अलग नही किया सकता यदि राज्य को इससे बचिंत कर दिया जाय तो राज्य कदापि नही रहेगा और जिसके पास यह सत्ता होगी , वही राज्य का स्वामी होगा क्योंकि उसके पास सार्वभौम सत्ता (सर्वोच्च सत्ता) होगी। प्रभुसत्ता ही वह शक्ति है जो राज्य के अस्तित्व को बनाये रखती है। अतः निःसन्देह अपने मूर्त रूप में राज्य व प्रभुसत्ता पर्यायवाची है। प्रभुसत्ता प्राधिकार का सर्वोच्च शिखर है। जिसके माध्यम से राज्य की रचना होती है और वह बना रहता है।

सम्प्रभुता ही राज्य को समाज के अन्य समुदायों यथा सामाजिक, आर्थिक,धार्मिक, सांस्कृतिक ,व्यावसायिक आदि से पृथक करती है। लास्की के शब्दों में ‘‘सम्प्रभुता के कारण ही राज्य अन्य सभी प्रकार के समुदायों से भिन्न है।’’इससे स्पष्ट है कि सम्प्रभुता राज्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भौतिक तत्व है। इसलिए विभिन्न राजनीतिक सिद्धान्तों का अध्ययन करते समय हमारे लिए सम्प्रभुता का विस्तृत और सुस्पष्ट अध्ययन आवष्यक हो जाता है। यह राज्य का मूल आधार है अतः हम सम्प्रभुता के माध्यम से राज्य और राज्य के माध्यम से राजनीतिक सिद्धान्त से भली भॉंति परिचित हो सकते हैं जो हमारे अध्ययन विषय का मूल उद्देश्य है।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य सम्प्रभुता के बारे में जानकारी प्राप्त करना है। इसका अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ सकेगें कि:

1. संप्रभुता के अर्थ और परिभाषा को जान पायेंगें।

2. संप्रभुता की अवधारणा के विकास का अध्ययन करेंगें।

3. संप्रभुता के विभिन्न पहलू आंतरिक व बाह्य संप्रभुता को जान पायेंगें।

4. संप्रभुता के विविध रूपों को जान पायेंगें।

7.2 सम्प्रभुता का अर्थ, परिभाषा

सम्प्रभुता शब्द आंग्ल भाषा के सावरनिटी शब्द का हिन्दी अनुवाद है । जिसकी उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द सुपरएनस् ; से हुई है। जिसका अर्थ है 'सर्वोच्च शक्ति ; इस प्रकार समाज की सर्वोच्च शक्ति को ही सम्प्रभुता कहा जाता है अर्थात यह वह सत्ता है जिसके ऊपर अन्य कोई सत्ता नही होती है। प्रत्येक समाज में विभिन्न प्रकार के वर्ग, संस्थाएं,समुदाय तथा शक्तियां होती है। इन सब में जो सर्वोच्च शक्ति रखता है उसे ही सम्प्रभु सत्ताधारी कहा जाता है। वर्तमान समय में यह शक्ति आवष्यक रूप से राज्य के पास होती है। जिसके आधार पर वह अन्य समुदायों, संस्थाओं तथा सामान्य जनता से अपने आदेषों का पालन कराता है। राज्य की इच्छा (आदेश) कानून के रूप में व्यक्त होते है। यदि कोई इसका का उल्लघंन करता है तो राज्य उसे कठोर से कठोर दण्ड दे सकता है। इस सर्वोच्च सत्ता को ही सम्प्रभुता, राज्य की सर्वोच्च इच्छा, या कानून के रूप में सम्बोधित किया जाता है अर्थात ये तीनो शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची हैं।

सम्प्रभुता की परिभाषाएं

जीन बोदां '' सम्प्रभुता नागरिक व प्रजाननों के ऊपर वह सर्वोच्च शक्ति है जिस पर कानून का कोई बन्धन नही होता है। ''

''ग्रोषियस -सम्प्रभुता उस व्यक्ति की सर्वोच्च राजनीतिक शक्ति है जिसके कार्य किसी अन्य के अधीन नही होते और जिसकी इच्छा का उल्लंघन न किया जा सके। ''

''बर्गेष सम्प्रभुता सभी व्यक्तियों तथा संस्थाओं पर मौलिक , निरंकुश तथा असीमित शक्ति है। ''

''ब्लैकस्टोन सम्प्रभुता वह सर्वोच्च अनिवार्य व अनियन्त्रित सत्ता है जिसमें सर्वाच्च विधित शक्ति होती है।

जेलीनेक -'' सम्प्रभुता राज्य का गुण है जिसके कारण वह अपनी इच्छा के अतिरिक्त किसी दूसरे की इच्छा या किसी बाहरी शक्ति के आदेषों से बाध्य नही है।''

''**विलोबी** सम्प्रभुता राज्य की सर्वोच्च इच्छा है।''

''**ड्यूग्वी** सम्प्रभुता राज्य की शासन शक्ति या आज्ञा देने की शक्ति है, वह राष्ट्र की इच्छा है जिसका संगठन राज्य के रूप में हुआ है उसे राज्य की सीमा के भीतर सब व्यक्तियों को आदेष देने का अधिकार है। ''

पोलॉक '' सम्प्रभुता वह शक्ति है जो न तो अस्थायी है न किसी दूसरे के द्वारा दी गयी है न ही ऐसे नियम के अधीन है जिन्हे वह स्वंय बदल सके और न ही पृथ्वी पर किसी अन्य शक्ति के प्रति उत्तरदायी है। ''

वुडरो विल्सन '' वह शक्ति जो सदा क्रियाशील रहकर कानून बनाती है और उनका पालन कराती है प्रभुसता कहलाती है।''

क्रेनेनवर्ग'' सम्प्रभुता राज्य का एक प्राकृतिक गुण है जिससे वह अपनी इच्छा दूसरों पर विना किसी शर्त के लागू कर सकता है। शासन की यही परिभाषा है, और यह राज्य का मौलिक तत्व है कि वह शासन करे। ''

लास्की '' सम्प्रभुता कानूनी तौर पर व्यक्तियों तथा समूहों पर सर्वोच्च होती है और उसके पास सर्वोच्च बाध्यकारी शक्ति होती है। ''

इस प्रकार कहा जा सकता है कि राज्य की सर्वषक्तिमान,सर्वव्यापक,असीमित तथा अविभाज्य शक्ति है। इसलिए इस पर आन्तरिक तथा वाह्य दोनो क्षेत्रों में कोई नियत्रण या कानूनी बन्धन नही होता है।

7.3 संम्प्रभुता का विकास

सम्प्रभुता अपने वर्तमान स्वरूप में आधुनिक युग की एक प्रमुख राजनीतिक अवधारणा है परन्तु इसके विकास का एक लम्बा इतिहास रहा है। प्राचीन काल से लेकर अबतक प्रायः सभी विचारकों ने सम्प्रभुता के सम्बन्ध में अपने मत प्रकट कियें है। यद्यपि प्राचीन काल के विद्वान सम्प्रभुता के विचार से पूर्णपरिचित नही थे तथापि राजनीति विज्ञान के जनक अरस्तू के द्वारा अपनी पुस्तक 'पालिटिक्स' में राज्य के लिए एक सर्वोच्च शक्ति की आवष्यकता महसूस की गयी थी। प्राचीन रोमन विचारकों ने भी अपने विचारों में एक सर्वोच्च सत्ता का उल्लेख किया है। जिसे 'समा पोटेस्टास' अर्थात सर्वोच्च सत्ता और 'प्लेनीच्यूडो पोटेस्टैटिस' अर्थात 'सम्पूर्ण सत्ता' कहा जाता था। इससे प्रतीत होता है कि प्राचीन रोमन विचारक सम्प्रभुता के आधुनिक विचार के काफी निकट पहुँच चुके थे। गैटिल के शब्दों में ''रोमन वकीलो ने राज्य की शक्ति की पूर्णता को व्यक्त किया था।''

मध्य युग जिसे कई बार 'अंधेरा युग' भी कहा जाता है, में सम्प्रभुता का विचार षिथिल पड़ गया। अर्थात कहा जा सकता है कि इस युग में सम्प्रभुता सम्बन्धी रोमन सामा्रज्य की उपलब्धियां धूल धूसित हो गयी। फिगिस ने लिखा है कि '' आधुनिक अर्थ में राज्य प्रभुनाम की कोई वस्तु मध्य युग में नही थी।'' मध्य युग में सम्प्रभुता के विकास में कई कठिनाइयॉ थी। इस युग को धर्म युग की भी संज्ञा दी जाते है। जिसमें सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्थापर धर्म का प्रभाव स्वीकार कर लिया गया था। राजषाही , पोपषाही ,तथा सामन्तवाद ने सम्प्रभुता के रथ को आगे बढ़ने से रोक दिया था। जिसके प्रतिक्रिया स्वरूप 16वीं शताब्दी में सम्प्रभुता के आधुनिक धारणा का उदय हुआ। जिसका अस्पष्ट रूप से ही सही सर्वप्रथम दर्षन इटली के प्रसिद्ध विज्ञान मैकियावेली के विचारों में होता है।

सम्प्रभुता की आधुनिक संकल्पना सर्वप्रथम जीन बोंदा की पुस्तक Six Books on The Republic में देखने को मिलती है। इसे व्यक्त करते हुए उसने लिखा कि '' सम्प्रभुता नागरिक व प्रजाननों के ऊपर वह सर्वोच्च शक्ति है जिस पर कानून का कोई बन्धन नही होता है।'' इस प्रकार बोंदा ही आधुनिक सम्प्रभुता के सिद्धान्त का जनक कहा जाता है। बोंदा ने सम्प्रभुता को कानूनी दृष्टि से सर्वोच्च मानते हुए भी उस पर प्राकृतिक कानून, ईष्वरीय कानून, सां विधानिक कानून और व्यक्तिगत सम्पति की सीमाएं आरोपित कर दी जिससे सम्प्रभुता की सर्वोच्चता बाधित हो गयी। ग्रोषियस सम्प्रभुता के वाह्य पक्ष का निरूपण करते हुए सभी राष्ट्रों को स्वतन्त्र तथा समस्तरी बतलाया परन्तु उन्होने भी उस पर अन्तर्राष्ट्रीय विधि की सीमा आरोपित कर दी।

सम्प्रभुता का स्पष्ट, तर्क संगत और वैज्ञानिक विष्लेषण करने का श्रेय इग्लैण्ड के प्रसिद्ध दार्षनिक थामस हॉब्स को दिया जाता है। उनके अनुसार सम्प्रभुता सामाजिक संविदा का सृजन है। जिसके माध्यम से लोगों ने अपने समस्त अधिकार उस व्यक्ति या सभा को सौंप दिया। जिसे लोंगो के द्वारा अपने जीवन रक्षा का दायित्व सौपा गया। यह सम्प्रभुता निरकुंष, असीमित तथा अमर्यादित है। किन्तु वह भी जीवन को संकट उत्पन्न होने की स्थिति में सम्प्रभुता पर 'आत्म रक्षा' का प्रतिबन्ध आरोपित करता है। वह इस सम्बन्ध में कहता है कि यदि राजा किसी को अन्न, जल, वायु तथा औषधि ग्रहण करने से रोकता है तो उस स्थिति में व्यक्ति राज्याज्ञा का उल्लंधन कर सकता है क्योंकि इससे व्यक्ति के जीवन को सकंट उत्पन्न हो जाता है।

हाब्स के बाद लॉक ने इग्लैण्ड के 1688 की गौरव पूर्ण क्रान्ति केा उचित ठहराने के लिए संवैधानिक सम्प्रभुता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तथा राज्य और राजा के सम्प्रभुता को अमान्य करार दिया। तत्पष्चात जीन जैक्स रूसों ने लोकप्रिय सम्प्रभुता के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर इसे आधुनिक प्रजातात्रिंक स्वरूप प्रदान किया। उसने हॉब्स तथा लॉक के विचारों में सुन्दर समन्वय स्थापित करते हुए एक तरफ सम्प्रभुता को निंरकुष , अविभाज्य , अपरित्याज्य बताया तो दूसरी ओर लोकहितकारी स्वरूप प्रदान करते हुए जनता में निहित कर दिया। उसके अनुसार सम्प्रभुता का निवास सामान्य इच्छा में होता है। रूसों के बाद बेंथम ने सम्प्रभुता का उल्लेख कानून बनाने वाली सर्वोच्च सत्ता के रूप में किया और बताया कि कानून का स्रोत प्राकृतिक नियम आदि नही है बल्कि सम्प्रभुता है।

आधुनिक सम्प्रभुता के अवधारणा के विकास में फ्रांसिसी राज्य क्रान्ति मील का पत्थर साबित हुई। इस क्रान्ति ने सम्प्रभुता के निरपेक्षता और निरंकुष्ता का समर्थन इस आधार पर किया कि सम्प्रभु शक्ति जनता में निहित है। अतः इसे प्रतिबंधित करने की आवश्यकता नही है। दुनिया के नवोदित राष्ट्रीय राज्यों ने भी आन्तरिक तथा वाह्य दोनो प्रकार के समग्र सम्प्रभुता का दावा किया । औद्योगिक क्रान्ति तथा लोक कल्याणकारी राज्य के विचार ने राज्य के कार्य क्षेत्र में आषातीत वृद्धि की। जिससे निरपेक्ष सम्प्रभुता की धारणा प्रबल हुई। जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटीश संसद को सम्प्रभुता प्राप्त हुई जो असीमित है।

18वीं एंव 19वीं शताब्दी में सम्प्रभुता को बलशाली समर्थक मिले। इनमें आदर्शवादी हीगल, ग्रीन व बोसांके का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। हीगल ने राज्य को विश्वात्मा का सर्वोत्तम रूप माना । हीगल का कथन है कि ‘‘राज्य पृथ्वी पर ईश्वर का अवतरण है।’’ उन्होने व्यक्ति को पूर्णतः राज्य के अधीन कर दिया। आगे वह कहते कि व्यक्ति को स्वतन्त्रता तभी प्राप्त हो सकती है जबकि वह राज्य के कानूनों का अक्षरसः पालन करे। राज्य आन्तरिक और वाह्य दोनो रूपों में सर्वोच्च होता हैं। इसलिए हीगल ने राज्यको युद्ध करने का पूर्ण अधिकार दिया और बताया कि जिस प्रकार समुद्र में शान्ति के समय इकट्ठा गन्दगी तुफान आने पर समाप्त हो जाती है ठीक उसी प्रकार समाज की गन्दगी युद्धों के समय समाप्त हो जाती है। इस प्रकार हीगल की सम्प्रभुता निरपेक्ष एवं असीम थी उसपर नैतिकता एंव अर्न्तराष्ट्रीय कानून का भी कोई नियंत्रण नही था। ग्रीन और बोसाके ने भी दार्षनिक आधारों पर राज्य के सर्वोच्च सत्ता का समर्थन किया।

ऑस्टिन ने अपनी पुस्तक ’लेक्चर्स आन जुरिसप्रुडेंस ’ 1832 में सम्प्रभुता को आधुनिक गुणो से सम्पन्न किया। जिसे सम्प्रभुता का अद्वैतवादी, एकल या कानूनी सिद्धान्त कहा जाता है। ऑस्टिन के विचारों ने सम्प्रभुता को सर्वोच्च षिखर पर पहुँच दिया। क्योंकि उन्होने सम्प्रभुता को निरपेक्ष, असीमित, असंक्राम्य और अखण्ड माना।

20वीं सदी के प्रारम्भ से ही राज्य के सर्वोच्च शक्ति अर्थात सम्प्रभुता के विरूद्ध आवाजे उठने लगी। एक तरफ अराजकतावादियों ने इसे व्यर्थ घोषित किया तो दूसरी ओर बहुलवादियों ने इसे मानव समुदाय के लिए अहितकर माना। उनका तर्क था कि सम्प्रभुता निरकुषंता का प्रतीक है , युद्ध को प्रोत्साहन देती है तथा विष्वषान्ति का शत्रु है। इसलिए सम्प्रभु शक्ति को समाज के विभिन्न समुदायों व संस्थाओं में विभाजित करने का इन लोगों ने प्रबल पक्षपोषण किया।

7.4 संम्प्रभुता के पहलू

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर सम्प्रभुता के दो प्रमुख पहलू दृष्टिगोचर होते है:

7.4.1 आन्तरिक सम्प्रभुता

आन्तरिक सम्प्रभुता का आशय है कि राज्य अपनी सीमाओं के भीतर व्यक्तियों, समुदायों, संस्थाओं, वर्गो, दलो आदि से श्रेष्ठ है अर्थात इन्हे राज्य के कानून और आदेषों के अधीन कार्य करना पड़ता है। राजाज्ञा का उल्लंघन करने पर राज्य सत्ता द्वारा कोई भी दण्ड दिया जा सकता हैं। कोई भी राज्य से अधिक श्रेष्ठता अर्थात इसके प्रति निरापदता का दावा नही कर सकता है। इनके ऊपर राज्य की शक्ति मौलिक, सार्वभौम, असीमित और पूर्णतः व्यापक होती है। लास्की ने आन्तरिक सम्प्रभुता की व्याख्या करते हुए कहा है कि ''राज्य अपने क्षेत्र के अर्न्तगत सभी मनुष्यो तथा समुदायों को आज्ञा प्रदान करता है और स्वयं उनमें से किसी की भी आज्ञा नही मानता है। उसकी इच्छा पर किसी प्रकार का कानूनी बन्धन नही है। किसी विषय में केवल अपनी इच्छा के अभिव्यक्ति मात्र से ही उसे वह सब अधिकार मिल जाता है जिसे वह करना चाहता है।''

7.4.2 वाह्य सम्प्रभुता

वाह्य सम्प्रभुता का आषय है कि राष्ट्र मण्डलो के बीच प्रत्येक राज्य सर्वोच्च होता है और वह अपनी इच्छानुसार दूसरे राज्यों के साथ सम्बन्ध रखने के लिए स्वतन्त्र होता है। कोई अन्य राज्य या अन्तर्राष्ट्रीय संगठन किसी राज्य से श्रेष्ठ होने का दावा नही कर सकता है। राज्य कतिपय सन्धियो अथवा वचनवद्धताओं के अधीन हो सकता है। परन्तु ये स्वतः प्रसूत होती हैं। इसलिए उनसे उनकी सम्प्रभुता पर कोई असर नही पड़ता है। कोई भी राज्य के ऊपर ऐसी बाध्यता लागू नही कर सकता है या विवष नही कर सकता जो उसे स्वीकार्य न हो ।

7.5 सम्प्रभुता के लक्षण

विभिन्न परिभाषाओं का विष्लेषण करने से सम्प्रभुता की निम्नलिखित विषेषताएं परिलक्षित होती है:

निरंकुशता

इसका अर्थ है कि सम्प्रभुता सर्वोच्च,सम्पूर्ण,निरंकुश तथा असीमित होती है। इसकी असीमितता के दो पहलू है - आन्तरिक और वाह्य । आन्तरिक क्षेत्र में राज्य की सत्ता सर्वोपरि और पूर्ण रूप से अमर्यादित है। इसलिए राज्य आन्तरिक क्षेत्र के लिए कोई भी कानून बना सकता है किसी भी कानून को बदल सकता है तथा उनका पालन न करने वालों को कोई भी दण्ड से सकता है। वाह्य दृष्टि से भी प्रभुसत्ता स्वतन्त्र होती है। इसलिए वह विदेश नीति का निर्धारण स्वतन्त्रता पूर्वक कर सकता है। युद्ध व सन्धि के सम्बन्ध में भी उसका निर्णय अन्तिम होता है। न तो कोई दूसरा राज्य और न ही कोई अर्न्तराष्ट्रीय संगठन इस सन्दर्भ में कोई दबाव डाल सकता है।

सैद्धान्तिक दृष्टि से सम्प्रभुता असीम व निरंकुशता होती है लेकिन व्यवहार में परम्पराएं, रीति-रीवाज, जनमत, नैतिक व प्राकृतिक नियम तथा अर्न्तराष्ट्रीय कानून सम्प्रभुता पर प्रतिबन्ध आरोपित. करते है । ब्लन्त्श्ली का कथन है कि '' संसार में पूर्ण स्वतन्त्रता जैसी कोई वस्तु नही है यहॉ तक कि राज्य भी सर्वषक्तिमान नही है क्योंकि वाह्य रूप से यह दूसरे राज्यों के अधिकारों से सीमित है और अन्दर से स्वंय अपने स्वभाव और सदस्यों के अधिकारों द्वारा मर्यादित है।

सर्वव्यापकता

सर्वव्यापकता का आशय है कि राज्य अपने निष्चित भौगोलिक सीमा के अर्न्तगतसभी व्यक्तियों ,संस्थाओं ,संघो ,तथा अन्य व्यवस्थाओं पर अपना पूर्ण अधिकार रखता है। उस सीमा में रहने वाले सभी लोग राज्य निर्मित कानून को मानने के बाध्य होते है। सम्प्रभुता से मुक्त होने का दावा कोई भी नही कर सकता है। लेकिन इसके अपवाद स्वरूप गिलक्राइस्ट ने ' राज्येत्तर सम्प्रभुता के सिद्धान्त की तरफ संकेत किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी राज्य में जो दूसरे राज्यों के राजदूत व दूतावास होते हैं। उन पर उसी राज्य के कानून व सम्प्रभुता लागू होती है जिस राज्य के वे होते है।

अदेयता

सम्प्रभुता सदैव राज्य से संलिप्त रहती है। अतः राज्य इसे किसी दूसरे को नही दे सकता है। इसे दूसरे को देने का अर्थ है कि राज्य का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। अर्थात राज्य आत्महत्या की कीमत पर ही इसे किसी दूसरे को दे सकता है। लाइबर के शब्दो में '' जैसे एक बृक्ष अपने उगने, पनपने, और फल ने फूल ने के अधिकार को नही छोड़ सकता है अथवा एक व्यक्ति विना अपना विनाष किए अपने जीवन व व्यक्तित्व को अपने से अलग नही कर सकता है ठीक उसी प्रकार राज्य से सम्प्रभुता को अलग नही किया जा सकता है।

स्थायित्व

जिस प्रकार राज्य स्थायी होता है उसी प्रकार सम्प्रभुता भी स्थायी होती है। जबतक राज्य कायम रहेगा तबतक सम्प्रभुता भी कायम रहेगी। सम्प्रभुता का अन्त राज्य का अन्त होगा । कई बार यह मान लिया जाता है कि राज्य में एक शासन या सरकार का अन्त होने या शासक की मृत्यु होने पर सम्प्रभुता का अन्त हो जाता है लेकिन यह एक भ्रम मात्र है। ब्रिटेन के बारे में यह कहावत प्रसिद्ध है कि '' राजा मृत है राजा चिंरजीवी हो।'' इसका भाव यह है कि राजा की मृत्यु से भी राजपद (सम्प्रभुता) का अन्त नही होता है।

अविभाज्यता

सम्प्रभुता पूर्ण होती है इसलिए इसे विभाजित भी नही किया जा सकता है। सके विभाजन का अर्थ होगा एक से अधिक राज्यों का निर्माण करना। उदाहरण स्वरूप 1971 ई0 के भारत-पाक युद्ध द्वारा पाकिस्तानी सत्ता दो टुकडों में विभाजित हो गयी जिससे एक नये राज्य बांग्लादेष का सृजन हुआ। कालहन ने लिखा है कि '' सम्प्रभुता एक या सम्रग वस्तु है उसके विभाजन का अर्थ उसे नष्ट करना होगा वह राज्य में सर्वोत्तम सत्ता है और आधी सम्प्रभुता कहना उतना ही असंगत है जितना आधा वर्ग या आधा त्रिभुज कहना।

मौलिकता

मौलिकता का अर्थ है सम्प्रभुता अपनी स्थिति का आधार स्वयं होती है। उसे न तो किसी ने पैदा किया है न तो बनाया है। बल्कि यह राज्य में जन्मजात होती है। अगर यह मान लिया जाय कि सम्प्रभुता राज्य को किसी द्वारा दी गयी है तो ऐसी स्थिति में यह स्वीकार करना होगा कि उसे देने वाला उसे वापस ले सकता है। जिस प्रकार किसी अमानत को रखने वाला उसका स्वामी नहीं होता उसी प्रकार किसी द्वारा प्रदत्त शक्ति सम्प्रभु नही हो सकती है।

अभ्यास प्रश्न 1

निर्देश -

नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखें।

अ . इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलान कर अपने उत्तर की त्रुटियों को दूर करें।

1.‘‘सम्प्रभुता राज्य की सर्वोच्च इच्छा है।‘‘ यह कथन है-

(क) वर्गेष (ख) ऑस्टिन (ग) बिलोवी (घ) बोदां

2. सम्प्रभुता के आन्तरिक तथा वाहय दो पक्ष माने जाते है- सत्य है / असत्य है।

3. राज्य के सम्प्रभुता का सिद्धान्त किसने प्रतिपादित किया है?

4. सम्प्रभुता एक आवश्यक लक्षण है-

(क) सरकार का (ख) राज्य का (ग) समाज का (घ) समुदाय का

7.6 सम्प्रभुता के विविध रूप

सम्प्रभुता के रूपों को लेकर राजनीति विज्ञान के विद्वानो में पर्याप्त मतभेद देखने को मिलता है । इस मतवैभिन्यता का आधार सम्प्रभुता की प्रकृति व उसका केन्द्र विन्दु रहा है। सम्प्रभुता का वास्तव में केवल एक ही रूप हो सकता हे। जिसे राज्य शक्ति कहा जाता है।

मैकाइबर ने कहा है कि ‘‘ जिन लोगो ने राज्य की सम्प्रभुता को लेकर शब्दो का भ्रमजाल रखा उनके उद्देष्य पवित्र नही है बल्कि वे केवल आदर्शवादी प्रचारक है।’’ इस सन्दर्भ में भ्रम को दूर करने के लिए सम्प्रभुता के कुछ प्रचलित रूपों की व्याख्या निम्न प्रकार से की जा सकती है।

नाममात्र की सम्प्रभुता और वास्तविक सम्प्रभुता

नाममात्र और वास्तविक सम्प्रभुता का अन्तर प्रायः संसदीय शासन व्यवस्थाओं में देखने में मिलता है। जहॉ संविधान सारी शक्तियां नाममात्र के सम्प्रभु (औपचारिक सम्प्रभु) को देता है। जबकि व्यवहार में उन शक्तियों का प्रयोग वह नही बल्कि वास्तविक सम्प्रभु करता है। इस व्यवस्था का विकास सर्वप्रथम ब्रिटीश शासन व्यवस्था में हुआ जहॉ सम्राट सम्पूर्ण सत्ता का वाहक होता है किन्तु लोकतन्त्र के विकास के साथ-साथ उसकी सम्पूर्ण शक्तियों का प्रयोग जनता के प्रतिनिधियों द्वारा किया जाने लगा है। इस प्रकार वहां यह देखने को मिलता है कि आज भी ब्रिटीष शासन में सारी शक्तियों को स्रोत सिद्धान्तः सम्राट ही है किन्तु व्यवहार में इन सारी शक्तियों का प्रयोग ब्रिटीष प्रधानमन्त्री, मंत्रिमण्डल व संसद द्वारा किया जाता है और वह केवल नाममात्र का सम्प्रभु रह गया जबकि वास्तविक सम्प्रभु मत्रिमण्डल व संसद है। यह अन्तर भारतीय शासन में भी देखने को मिलता है जहॉ सविधान सारी शक्तियां राष्ट्रपति को देता है जैसा कि संविधान के अनु0 53 में कहा गया है कि संघ की समस्त कार्यपालिका शक्तियां राष्ट्रपति में निहित है । जिसका प्रयोग वह स्वंय या अपने अधीनस्थों के माध्यम से करेगा। लेकिन व्यवहार में इन सभी शक्तियों का प्रयोग भारतीय प्रधानमन्त्री व उसका मंन्त्रीमण्डल ही करता है। इस प्रकार राष्ट्रपति नाममात्र का सम्प्रभु है जबकि और प्रधानमन्त्री सहित मन्त्रिमण्डल वास्तविक सम्प्रभु है।

विधिक व राजनीतिक सम्प्रभुता

विधिक सम्प्रभुता एक सवैधानिक संकल्पना है जिसका आषय है कि बैधानिक सम्प्रभु को कानून बनाने की सर्वोच्च शक्ति प्राप्त है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि उसके आदेश ही कानून है अर्थात राज्य के सभी कानून उसी के द्वारा निर्मित किये जाते है। इस प्रकार कानूनों का निर्माण करने वाली सत्ता ही कानूनी सम्प्रभु कहलाती है। विधिक सम्प्रभु का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण ब्रिटीष संसद है जो किसी भी विषय पर कोई कानून बना सकती है। इसलिए कहा जाता है कि ब्रिटीष संसद ब्रिटेन में केवल स्त्री को पुरूष और पुरूष को स्त्री बनाने के अतिरिक्त अन्य कोई भी कार्य कर सकती है यद्यपि कानूनी तौर पर वह इसे भी कर सकती है। इस प्रकार विधिक सम्प्रभु की शक्ति निरपेक्ष ,असीमित, तथा अप्रतिबन्धित होती है। इसके विपरीत राजनीतिक सम्प्रभुता की संकल्पना अस्पष्ट और भ्रमित करने वाली है। इस सन्दर्भ में कहा जाता है कि प्रत्येक विधिक सम्प्रभु के पीछे एक राजनीतिक सम्प्रभु होता है। जिसके समक्ष समय-समय पर विधिक सम्प्रभु को झुकना पड़ता है। डायसी ने लिखा है कि ''जिस सम्प्रभुता को वकील लोग स्वीकार करते है उसके पीछे एक दूसरा सम्प्रभु रहता है। जिसके समक्ष बैधानिक सम्प्रभु को सिर झुकाना पड़ता है।

राजनीतिक सम्प्रभुता निर्वाचक मण्डल या मतदाताओ में अवस्थित होती है। प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र में जहॉ जनता स्वयं शासन संचालन करती है वहॉ विधिक और राजनीतिक सम्प्रभु का अन्तर धुधंला होता है लेकिन अप्रत्यक्ष प्रजातन्त्र (प्रतिनिध्यात्मक शासन) में जहॉ शासन कार्य जनता के द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि करते है वहॉ राजनीतिक सम्प्रभुता मतदाताओं में निहित होती है। जिसका दर्षन नियमित अन्तराल के बाद होने वाले चुनावों में होता है । जिससे सरकारों

का निर्माण होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि चुनाव ही वह श्रेष्ठ तरीका है जिसमें राजनीतिक सम्प्रभु की इच्छा व्यक्त होती है।

विधितः और वस्तुतः सम्प्रभुता

सामान्य रूप से विधितः और वस्तुतः सम्प्रभुता एक ही होती है क्योंकि प्रायः सत्ता प्राप्त व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह कानून द्वारा मान्यता प्राप्त या स्थापित होता है। इन दोनो के मध्य अन्तर आपातकालीन स्थितियों में उत्पन्न होता है। विधितः सम्प्रभु वह होता है जो राज्य के संविधान, सुस्थापित कानून व परम्पराओं के अनुरूप पद पर आसीन होता है। इसलिए उसके पास आदेष देने तथा उसका पालन कराने का वैध अधिकार होता है। जबकि वस्तुतः सम्प्रभु वह होता है जो राज्य के सर्वोच्च पद पर गैर कानूनी अथवा असंवैधानिक ढंग से आसीन हो जाता है तत्पष्चात अपनी इच्छा को बल पूर्वक राज्य के सभी लोगों पर लागू करने लगता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि बैधानिक सम्प्रभुता का आधार कानून होता है। जबकि वास्तविक सम्प्रभुता का आधार शक्ति होती है। वह अपने शक्ति के बल पर जनता से अपनी आज्ञाओं का पालन करवाती है। भले ही उसे शासन करने या आज्ञा पालन कराने का कानूनी अधिकार नही है। इतिहास में ऐसे कई उदाहरण देखने को मिलते है जहॉ कानूनी सम्प्रभु को अपदस्थ कर कोई व्यक्ति या समुदाय सत्ता हथिया लेता है। जैसे रूस में बोल्षेविकों द्वारा जार को अपदस्थ कर लेनिन के नेतृत्व में सत्ता पर नियत्रंण कर लिया गया। इस तरह विधितः सम्प्रभु जार थे जबकि वस्तुतः सम्प्रभुता लेनिन के हाथों में आ गयी। लेकिन यही सम्प्रभुता जब दीर्घकाल तक बनी रह जाती है तो धीरे-धीरे वह जन सहमति प्राप्त कर वैधानिक बन जाती है। क्योंकि कोई भी सम्प्रभु केवल शक्ति के आधार पर अधिक दिनों तक अपना अस्तित्व बनाये रखने में सफल नही हो सकता है।

लौकिक सम्प्रभुता

लौकिक सम्प्रभुता का आषय है कि शासन की अन्तिम और सर्वोच्च शक्ति का स्रोत एंव स्वामिनी जनता ही है। आधुनिक लोकतन्त्र की धारणा लोकप्रिय सम्प्रभुता पर ही आधारित है। इसकी आवाज सर्वप्रथम कौंसिलियर आन्दोलन के समर्थको ने पन्द्रहवीं शताब्दी में चर्च की शक्ति के खिलाफ उठायी लेकिन आधुनिक युग में इसे इसे सर्वप्रथम स्थापित करने श्रेय संविदावादी विचारक जीन जैक्स रूसों को दिया जाता है। जिन्होने सामान्य इच्छा के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर इसका प्रबल पक्षपोषण किया। रूसो के अनुसार कोई भी प्रषासक अपनी इच्छा को आज्ञप्ति के रूप मे व्यक्त तो कर सकता है परन्तु कानून सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति होता है। लोकप्रिय सम्प्रभुतां लोकमत की शक्ति में सार्थक होती है। चूंकि शासक वर्ग को निष्चित अन्तराल के बाद फिर से सर्वसाधारण का विष्वास प्राप्त करने के लिए चुनाव का सामना करना पड़ता है अतः वह लोकमत की उपेक्षा नही कर सकता है। लोकप्रिय सम्प्रभुता की मूल मान्यता यह है कि शासक वर्ग के द्वारा शासन कार्य सदैव

जनहित को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए क्योंकि उसका अस्तित्व तभी तक बना रहेगा जबतक उसे जनसामान्य के बहुमत का समर्थन (विश्वास) हासिल है। गिलक्राइस्ट के अनुसार '' लोकप्रिय सम्प्रभुता सामान्यतया किसी व्यक्तिगत शासक या वर्ग की अपेक्षा लोगों की शक्ति है। ''

यह लोकप्रिय सम्प्रभुता की धारणा ही आगे चलकर अमेरिकी और फ्रासीसी क्रान्ति का आधार बनी। अमेरिका के स्वतन्त्रता आन्दोलन में स्पष्ट रूप से घोषित किया गया था कि प्रत्येक मानव जन्म से ही समान रूप से जीवन, स्वतन्त्रता और प्रसन्नता प्राप्त करने का अधिकारी होता है।फ्रासिसी क्रान्ति में घोषित किया गया कि प्रत्येक मनुष्य जन्म से स्वतन्त्रता और अधिकार में समान हैं यदि किसी राजनीतिक व्यवस्था के द्वारा स्वाधीनता, सुरक्षा और सम्पति का दमन किया जाता है तो राजनीतिक संगठन का यह दायित्व होता है कि वह संगठित रूप से उसका विरोध करे ।

लोकप्रिय सम्प्रभुता का विचार भले ही लोकलुभावना तथा जनसम्मान से ओत-प्रोत प्रतीत हो किन्तु इसका अर्थ अनिष्चितता से आच्छादित है अर्थात इसकी व्याख्या करना दुष्कर हो गया है। यद्यपि यह कहनाअच्छा लगता है कि किसी भी राजनीतिक व्यवस्था का मूल आधार जनता है।इसलिए शासन उसकी इच्छा के अनुरूप ही होना चाहिए परन्तु यहॉ प्रष्न उठता है कि जनता का अर्थ क्या है। गार्नर लिखते है कि जनता के दो अर्थ है- प्रथम राज्य में रहनेवाला सम्पूर्ण असंगठित तथा अनिष्चित जन समुदाय जिसमें बच्चे ,बूढ़े ,अपराधी, दिवालिया, तथा विदेषी आदि सम्मिलित है जिनका राजनीतिक व्यवस्था के सचालन में कोई योगदान नही है। यदि वे जनता के द्योतक है तो कुल मिलाकर इस धारणा का कोई अर्थ नही है। द्वितीय निर्वाचक मण्डल अर्थात जनता का केवल वह भाग जिसे वयस्क मताधिकार प्राप्त है किन्तु इन्हें भी जनता नही कहा जा सकता क्योकि किसी भी राज्य में मतदाताओं की संख्या कुल जनसख्यां से काफी कम होती है। इसके अतिरिक्त चुवान वहुमत के आधार पर होता है जो सम्पूर्ण जनता का अल्पमत हो सकता है। जिसे वैधानिक दृष्टि से सम्प्रभु नही कहा जा सकता है। सत्य तो यह है कि वर्तमान असमानता पूर्ण समाज में सम्प्रभुता कुछ साधन सम्पन्न लोगो के हाथ की कठपुतली मात्र बनकर रह गयी है।

डा0 आशीर्वादम के अनुसार लोकप्रिय सम्प्रभुता का अपना कुछ विषेष गुण होता है जिसका उल्लेख निम्नरूपों में किया सकता है:

(१) शासन शासक वर्ग का हित करने वाला नही बल्कि अनिवार्य रूप से जनता के हितों की साधना करने वाला होना चाहिए।

(२) यदि शासक जान बूझकर जनता की इच्छाओं का दमन करता है तो जन क्रान्ति की सम्भावना प्रबल हो जाती है।

(३) जनमत की अभिव्यक्ति सरल वैधानिक साधनो के माध्यम से होनी चाहिए।

(४) सरकार को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाये रखने हेतु समयानुसार चुनाव ,स्थानीय स्वायत शासन , लोकनिर्णय, आरम्भक ,प्रत्याह्वान आदि की व्यवस्था सुनिष्चित की जाय।

(५) शासन के द्वारा अपनी शक्तियों का प्रयोग सविधांन के अनुरूप किया जाय स्वेच्छाचारी ढंग से नही ।

इस प्रकार यह देखने को मिलता है कि लौकिक सम्प्रभुता की धारणा सम्प्रभुता का आधार जनता की शक्ति को मानती है। इस विचारधारा ने प्राचीन निंरकुष राजतन्त्रों की चूले तो हिला दी किन्तु राजतन्त्र के खात्में के बाद यह सिद्धान्त मार्ग

भटक गया और आज यह अस्पष्टता के गर्त में धसा पड़ा है। वर्तमान में लौकिक सम्प्रभुता की धारणा भले ही भ्रम उत्पन्न करने वाली प्रतीत हो किन्तु इसकी लोकप्रियता को नजरअदांज नही किया सकता। इसकी सवसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह शासन का आधार जनता या जनसहमति को मानती है। यह राज्य के अस्तित्व को जनहित में स्वीकार करती है। यदि कोई राज्य अपने जनता के हितो की लगातार अवहेलना करता है तो शासन के विरूद्ध क्रान्ति का सम्भावना बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त यह सिद्धान्त इस तथ्य को भी उजागर करता है कि सरकार को अपनी शक्ति का प्रयोग वैध कानूनों के आधार पर ही करना चाहिए मनमाने तरीके से नही।

अभ्यास प्रश्न 2

नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखें।

अ. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलान कर अपने उत्तर की त्रुटियों को दूर करें।

1. लौकिक सम्प्रभुता की अवधारणा का प्रतिपादन किसने किया है? .

.....
.....

2. सम्प्रभुता का निवास अन्तिम रूप से कहॉ होता है?

.....
.....

3. कानूनी सम्प्रभु को प्रायः किसके आगे झुकना पड़ता है-

(क) राजनैतिक सम्प्रभुता (ख) लौकिक सम्प्रभुता (ग) समूह (घ) संघ

7.7 सारांश

सम्प्रभुता राज्य की सर्वोच्च शक्ति होने के साथ-साथ उसके अस्तित्व का आधार भी है। अपने इसी शक्ति के आधार पर वह राज्य के लोगो के लिए कानून का निर्माण तथा उनका पालन सुनिष्चित करती है और उल्लंघन करने वालो को कठोर से कठोर दण्ड देती है। सम्प्रभुता के सम्बन्ध में एक ध्यान देने योग्य तथ्य यह भी है कि सैद्धान्तिक दृष्टि से यह भले ही निरंकुष, अमर्यादित व अदेय है लेकिन व्यवहार में उस पर अनेक नियन्त्रण व सीमाए होती है। इसके अतिरिक्त यह कुछ संघो के अलग-अलग व्यक्तित्व को भी स्वीकार करती है। वर्तमान युग प्रजातन्त्र व अर्न्तराष्ट्रीयता का युग है जिसमें सम्प्रभुता के उस रूप को स्वीकार नही किया जा सकता है जिस रूप में इसके प्राचीन समर्थको बोदां , हॉब्स , हीगल व ऑस्टिन ने स्वीकार किया है।

7.8 शब्दावली

संविधान - राज्य की मूल विधि जो राज्य और सरकार का आधार होती है।

सम्प्रभुता - राज्य को प्राप्त सर्वोच्च शक्ति जिसके कारण वह अपने आन्तरिक तथा वाह्य दोनो मामलों में पूर्णतः स्वतन्त्र होता है।

पोपशाही - जीवन के सभी पहलुओं पर धर्म अर्थात इसाईयत का प्रभाव स्थापित होना।

सामन्तवाद - ऐसा वर्ग जिसका अधिकांश पूंजी पर स्वामित्व हो।

लौकिक सम्प्रभुता - सम्प्रभुता जनता में निहित होती हैं।

अराजकतावाद - ऐसी विचार परम्परा जो राज्य के अस्तित्व का विरोध करती है।

विधितः - सम्प्रभुता प्रभुसत्ताधारी धारी के शक्ति का वैध आधार है।

वस्तुतः - किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह द्वारा शक्ति का वास्तविक प्रयोग।

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. (ग) विलोबी 2. सत्य है 3. गिलक्राईस्ट 4. (ख) राज्य का

अभ्यास प्रश्न 2

1. रूसो 2. राज्य में 3. (क) राजनैतिक संप्रभुता के

7.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1- ओ0पी0गाबा राजनीति सिद्धान्त का रूपरेखा मयूर पेपर वैक्स , नोयडा

2- एडी0 आशिर्वादम तथा कृष्णकान्त मिश्रा ,राजनीति विज्ञान,एस0 चन्द्र एण्ड कम्पनी लि0 नयी दिल्ली

3-एम0 पी0 जैन , आधुनिक राजनीति के सिद्धान्त , आथर्स गिल्ड पब्लिकेषन दिल्ली

4-ए0 अप्पादोराई आक्सफोर्ड यूनिवरसिटी प्रेस दिल्ली

5-डा0 एन0 डी0 अरोरा एंव ए0 के0 आनन्द, राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त , साहित्य भवन आगरा

6-हैराल्ड जोसेफ लास्की, ए0 ग्रामर आफ पालिटिक्स

7.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1-ज्ञान सिंह सन्धु, राजनीतिक सिद्धान्त, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेषालय दिल्ली विष्वविद्यालय

2-जे0 सी0 जौहरी एंव सीमा जौहरी, आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त, स्टर्लिंग पब्लिकेषन प्रा0 लि0 नयी दिल्ली

3-वीरकेष्वर प्रसाद, राजनीतिशास्त्र के मूल सिद्धान्त, ज्ञानदा पब्लिकेषन नयी दिल्ली

4-डी0डी0 राफेल, राजनीतिक दर्षन की समस्यांये मैकमिलन लन्दन

7.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1-सम्प्रभुता को परिभाषित करते हुए इसकी प्रमुख विषेषताओं पर प्रकाष डालिए।
2-सम्प्रभुता के सिद्धान्त के विकास की व्याख्या प्रस्तुत करें।
3-आन्तरिक तथा वाह्य सम्प्रभुता की विस्तृत व्याख्या करें।
4-विधितः और वस्तुतः समप्रभुता तथा कानूनी और राजनीतिक सम्प्रभुता के मध्य भेद करे।
5-सम्प्रभुता सिद्धान्त का आलोचनात्मक परीक्षण करें।
6-सम्प्रभुता क्या है ? यह राज्य कहा अवस्थित होती है ?
7-'सम्प्रभुता का विभाजन उसका विनाश करना है।' व्याख्या करें।

इकाई 8: शक्ति

8.0 प्रस्तावना

8.1 उददेश्य

8.2 शक्ति क्या है?

8.3 शक्ति का स्वरूप

8.4 शक्ति के स्रोत

8.5 शक्ति के प्रकार

8.6 शक्ति और सत्ता

8.7 शक्ति और प्रभाव में अंतर

8.8 सारांश

8.9 शब्दावली

8.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

8.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

8.13 निबन्धात्मक प्रश्न

8.0 प्रस्तावना

इस इकाई में, हम शक्ति की अवधारणा, इसकी अभिव्यक्तियों और व्यक्तियों और समुदायों पर इसके प्रभाव का पता लगाएंगे। शक्ति दूसरों पर प्रभाव, नियंत्रण या अधिकार स्थापित करने की क्षमता है। यह एक बहुआयामी अवधारणा है जो विभिन्न रूपों में मौजूद है, जिसमें सरकारों द्वारा प्रयोग की जाने वाली राजनीतिक शक्ति से लेकर समुदायों के भीतर सामाजिक शक्ति और रिश्तों में पारस्परिक शक्ति शामिल है।पूरे इतिहास में, शक्ति सभ्यताओं को आकार देने, गठबंधन बनाने और महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने में एक प्रेरक शक्ति रही है। राजनीतिक प्रणालियों, आर्थिक संरचनाओं और सामाजिक पदानुक्रमों के कामकाज को समझने के लिए शक्ति की गतिशीलता को समझना आवश्यक है।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त हम जान पाएंगे:

1-शाक्ति के अर्थ को समझने में सक्षम होगें।

2. शक्ति के विभिन्न प्रकारों को जान पाएंगे।

2-शाक्ति और सत्ता के अन्तर को समझ सकेगें।

8.2 शक्ति क्या है?

साधारणतयाः लोग जो कुछ नहीं करना चाहते,उनसे वैसा कराने की क्षमता को 'शक्ति की संज्ञा' दी जाती है। दूसरे शब्दों में जब एक व्यक्ति दूसरे की इच्छा के विरूद्ध ससे किसी निर्णय का पालन कराता है, तब पहला व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के ऊपर शक्ति का प्रयोग करता है। **कौटिल्य** ने "दण्ड शक्ति" जो शक्ति का ही पर्याय है, को सम्पूर्ण सांसारिक जीवन का मूल आधार माना जाता है।

मैक्स बेबर के अनुसार " शक्ति का अर्थ है- किसी सामाजिक सम्बन्ध के अन्तर्गत एक कर्ता के द्वारा दूसरों की इच्छा के विरूद्ध अपनी इच्छा को कार्यान्वित करने की संभावना।"

आर0एम0मैकाइवर के अनुसार "यह किसी भी सम्बन्ध के अन्तर्गत ऐसी क्षमता है जिसमें दूसरों से कोई काम लिया जाता है या आज्ञा पालन कराया जाता है।"

बर्ट्रेंड रसेल के शब्दों में शक्ति से तात्पर्य "मन चाहा प्रभाव पैदा करना।"

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जिसके पास शक्ति है, वह दूसरों का अपनी इच्छा के अनुसार चलाने की क्षमता रखता है। इस तरह शक्ति की चिर- प्रचलित अवधारणा मुख्यतः दूसरों के ऊपर प्रयुक्त शक्ति का संकेत देती है।

8.3 शक्ति का स्वरूप

राजनीति हमारे जीवन का ऐसा क्षेत्र है जहॉ सबके लिए नियम बताए जाते हैं. निर्णय भी वहीं पर होते है, समाज के सभी व्यक्तियों के लिए अधिकतर कर्तव्य, और दायित्व निर्धारित किये जाते है।

कोई भी नियमों को धरातल पर उतारने के लिए या साकार रूप देने के लिए शक्ति की जरूरत होती है, अन्यथा वो केवल कही हुई बातें रह जायेंगी। शासन में शक्ति का वहीं स्थान है जो गाड़ी में ईन्जन का है। शक्ति के बिना राजनीति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। समाज में शक्ति,सुरक्षा और न्याय को लाने का केवल यही एक साधन है। हेरल्ड लासवेल कहते है कि राजनीति का सरोकार शक्ति को सॅवारने और मिल बॉटकर उसका प्रयोग करने से है। इससे भी आगे बढ़कर काइकेल कार्टिस शक्ति के स्वरूप के बारे अलग ढंग से परिभाषा देते है, उनके अनुसार "राजनीति का अर्थ शक्ति और उसके प्रयोग के बारे में व्यवस्थित विवाद हैं, इसके अन्तर्गत प्रतिस्पर्धा मूल्यों , विचारों ,व्यक्तियों,हितों और मॉगों में से किसी-न- किसी का चयन करना होता है।"

8.4 शक्ति के स्रोत

शक्ति क्या है और उसका स्वरूप कैसा है इसकी चर्चा हम ईकाई के प्रारम्भ में कर चुके है। शक्ति की उपज कहा से है, इसे जानने के लिए शक्ति के स्रोतों का अध्ययन करना होगा। शक्ति के प्रमुख स्रोत निम्नलिखित हैः-

1.आर्थिक व भौतिक साधनः- आर्थिक व भौतिक साधन शक्ति प्राप्त करने के बाहरी तत्व है। आर्थिक व भौतिक साधन शक्ति के वे तत्व है जो समाज व्यक्ति की पहचान का स्तर तय करत है। सम्पत्ति है। आज समाज के लिए सबसे महत्वपूर्ण वस्तु है यह आन्तरिक रूप से कोई विशेष प्रभाव नहीं डाल सकती लेकिन आज के उदारीकरण के युग में शक्ति का यह स्रोत बहुत प्रभावशाली सिद्व हो रहा है। इस प्रकार भौतिकवादी युम में सम्पत्ति शक्ति का सबसे बडा साधन है। यह समाज में व्यक्ति के व्यक्तित्व का स्तर तय करती है।

2.ज्ञान और विचार शक्तिः- ज्ञान,शक्ति प्राप्त करने का महत्वपूर्ण साधन है । जिसके व्यक्ति के पास ज्ञान का भण्डार होगा व मनुष्य अपने तथ्यों को आसानी से प्राप्त कर लेता है। जिससे समाज में उसका अलग स्थान बनता है। उससे व्यक्ति प्रभावित होता है और समाज में प्रभाव जमाकर वह शक्ति आर्जित कर लेता है। ''चमत्कार को नमस्कार'' वाली कहावत ज्ञान द्वारा शक्ति प्राप्त करने के साधनों पर सटीक बैठती है।

3.बल अथवा दमनः- बल अथवा दमन भी शक्ति प्राप्त करने का एक स्रोत है। प्राचीन काल समाज ''मत्सय न्याय'' था। जहॉ बलिष्ठ लोग कमजोर और कुचले लोगों का शोषण करते थे। यह भय पर आधारित है। इस भय के कारण दमनकारी व्यक्ति अपनी शक्ति को बढा़ता जाता है। जिससे समाज में उसका भय का वातावरण बना रहें।

4.संगठनः- ''संगठन में शक्ति है'' यह उक्ति शक्ति के विषय में सही चरित्रर्ता होती है। यह सामान्य सी बात है कि यदि आपको अपनी बात मनवानी है तो एक समूह तैयार करना पड़ता है। यदि आप अकेले है तो जिससे आप अपनी बात मनवाना चाहते है जरूरी नही है कि वो व्यक्ति या सरकार आपकी बातें माने। इसलिए विभिन्न ईकाईयों या समूह अपने हितों की पूर्ती के संगठन का निर्माण करते है। जिससे उनकी शक्ति में वृद्वि हो जाती है। और इसी शक्ति के कारण वे अपने हितों की पूर्ति के लिए समाज पर शासन पर दबाब डालते है। आज के समय में, दबाब समूह जैसे कि मजदूर संघ, व्यापारी संघ, धाग संघ इसके महत्वपूर्ण उदाहरण है।

5.व्यक्तित्वः- व्यक्तित्व भी शक्ति प्राप्त करने का स्रोत है। जिस व्यक्ति का व्यक्तित्व प्रभावशाली होगा, वह मनुष्य समाज अपना अलग अलग स्थान रखता है। व्यक्तित्व मनुष्य में आत्म विश्वास बढ़ाता है। प्रभावशाली व्यक्तित्व वाला मनुष्य जब आत्मविश्वास से भरा होता है तो वह समाज में उसको प्रतिष्ठा प्रदान कराता है। प्रतिष्ठा ही मनुष्य को शक्ति प्रदान करती है। यदि व्यक्ति का व्यक्तित्व बुरे आचरण वाला हो, तो वह शक्ति को भय का रूप देता है तथा भय से जो शक्ति प्राप्त होती है वह अवनति का मार्ग प्राप्त करती है।

6.विश्वासः- यदि शक्ति में विश्वास हो तो यही शक्ति का महत्वपूर्ण स्रोत होती है। चाहे व्यक्ति के पास कितनी शक्ति क्यों न हो और उस शक्ति को प्राप्त करना का साधन चाहे जो रहा हो। किन्तु यदि शक्ति में विश्वास नही होता है तो फिर शक्ति शून्य है। इसलिए मनुष्य के लिए यह अति आवश्यक वह शक्ति में विश्वास रखे।

8.5 शक्ति के प्रकार या आयामः-

राजनीति में शक्ति का प्रयोग बहुत विस्तृत क्षेत्र में होता है। अनेक विद्वानों ने शक्ति के अलग-अलग प्रकारेां का वर्णन किया है। मैक्स बेबर के अनुसार शक्ति का सही रूप औचित्यपूर्ण शक्ति इसके अलावा में शक्ति नहीं "दमन" होता है। औचित्यपूर्ण शक्ति के तीन प्रमुख प्रकार बताये है। 1.कानूनी या वैधानिक 2. परम्परागत 3. करिश्माई शक्ति। लेकिन शक्ति जिस रूप में राजनीति को प्रभावित करती है उनसे मौटे तौर पर तीन प्रकार की शक्ति होती है।

1. राजनीतिक शक्ति 2. आर्थिक शक्ति और 3. वैचारिक शक्ति

1. राजनीतिक शक्तिः- सामान्य रूप राजनीतिक शक्ति से अभिप्राय है, समाज के मूल्यवान संसाधनों को अपनी इच्छा के अनुसार विभिन्न, समूहों के हित में या विभिन्न कार्यक्रमों में लगाने की शक्ति। इनमें नीतियों का निर्माण और इन्हें लागू करना, कानूनों का निर्माण करना, कानून का उल्घन्न करने वाले को दंड देना आदि। इस प्रकार पुलिस न्यायालय, काराग्रह आदि शक्ति भी राजनीतिक शक्ति के उपकरण हैं। राजनीतिक शक्ति का प्रयोग सरकार के विभिन्न अंगों के द्वारा किया जाता है जैसे कानून का निर्माण विधानमण्डल के द्वारा किया जाता है, कार्यपालिका कानून को लागू करता है तथा न्यायापालिका कानून की व्याख्या का काम करती है,रक्षा करती नौकरशाही तथा पुलिस के माध्यम से। लोगों से कानून व नियमों का पालन करवाने में राजनीतिक शक्ति एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

मार्क्सवादी लोग भी शक्ति की अवधारणा में विश्वास करते है। मार्क्सवादी राजनीतिक शक्ति को पूंजीपति वर्ग के हाथों का एक ऐसा औजार मानते है जिसके द्वारा आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति (पूंजीपति) गरीब लोगो का शोषण कर सके। मार्क्स राजनीतिक और आर्थिक शक्ति में अन्तर नही मानता है। बल्कि उसकी मान्यता है कि राजनीतिक शक्ति के उत्पादन के स्तर पर उन आर्थिक सम्बन्धों का परिणाम होती है, जिसके माध्यम से शासक वर्ग आर्थिक स्तर पर सम्पन्न वर्ग के हितों की पूर्ती के लिए बनायें रखना चाहता है। कुछ लोग राजनीतिक शक्ति और राजनीतिक क्षमता में अन्तर करते है जबकि ये दोनो एक दूसरे की पूरक है।

2. आर्थिक शक्तिः- आर्थिक शक्ति से आशय है कि जब कोई सम्पन्न व्यक्ति या राष्ट्र अपने धन, सम्पदा,उत्पादन के साधनों के बल पर निर्धन लोगों या निर्धन राष्ट्रों के जीवन की परिस्थितियों पर नियन्त्रण स्थापित करता है तो उसमें आर्थिक शक्ति निहित होती है। आर्थिक शक्ति राजनीतिक शक्ति पर हमेशा प्रभाव डालती है। उदाहरण के लिए, उदारीकरण के दौर में बड़े बड़े जमीदार, उघोगपति और व्यापारिक घराने सरकार की नीतियों औी निर्णयों को प्रभावित करते है और विकास की प्राथमिकताओं को निर्धारित के लिए अपने हितों केा बढावा देते है।

आज के इस युग में ,आर्थिक शक्ति के स्वामी भिन्न-भिन्न तरीको से राजनीति को प्रभावित करते है। उनके दबाब समूह ज्यादातर ताकतवर और प्रभावशाली होते है। उदाहरण के तौर पर भारत में व्यापारिक संगठन,किसान संगठन निर्बल और कमजोर होते है। वे सरकार को प्रभावित नही कर पाते है। कहा तो यह भी जाता है कि हमारी सरकार पूंजीपतियों के हाथ का खिलौना है। वे सरकार को अपने हितों के अनुसार नीतियॉ बनाने के लिए बाध्य करते है। क्योंकि जितने भी

मुख्य समाचार पत्र पत्रिकाओं है उन पर व्यापारिक घरानों का कब्जा है। इसके अलावा बड़े-बड़े पूंजीपति और धन्ना सेठ अक्सर चोरी-छिपे राजनीतिक दलों और चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों को भारी वित्तीय सहायता देते है। चाहे राजनीतिक जनसाधारण के हितों की दुहाई देते हो, परन्तु भीतर से वे अपने वित्तदाताओं के हितो की रक्षा के लिए संकल्पबद्व होते है।

3. विचाराधारात्क शक्ति:- वैचारिक शक्ति वह शक्ति है जिसके माध्यम से शासक वर्ग जनता के धार्मिक,नैतिक व सामाजिक मूल्यों को ,भावनाओं,परम्पराओं आदि को समक्षकर इस तरह प्रयोग करते हैं, जिससे साधारण जनता उनकी स्वामी भक्त बनी रहे और बिना किसी झंझट के आज्ञा पालन करती रहें।

वर्तमान समय यें, भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न प्रकार की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्थाएं प्रचलित हैं, और उन्हें वैधता प्रदान करने के लिए पूंजीवाद,उदारवाद,साम्यवाद या समाजवाद इत्यादि को सर्वोत्तम शासन प्रणाली सिद्व करने की कोशिश की जाती है। ये सारे वादे इन विचारधाराओं से सम्बन्धित है।

8.6 शक्ति और सत्ता-

राजनीति के अन्तर्गत किसी भी निर्णय को लागू करने के लिए शक्ति का प्रयोग आवश्यक है। जहॉ कहीं पर भी आधुनिक समय में सत्ता का प्रयोग होता है वह सत्ता शक्ति का पर्याय बन जाती है और शक्ति की भूमिका सबसे प्रभावशाली वहॉ सिद्व होती है जहॉ शक्ति केवल बल प्रयोग का साधन नही रह जाती बल्कि वैधता के साथ मिलकर सत्ता का रूप धारण कर लेती है। अतः सत्ता वह शक्ति है। जिसे न्यायचित माना जाता है। जिसे सभी वैध स्वीकार करते हैं या तो उसके निर्णयों पर सहमति देते है या फिर असहमति प्रदान करते है। शक्ति से संघर्ष होने पर व्यक्ति या तो समर्थन करता है या विरोध प्रकट करता हैं जबकि सत्ता से संघर्ष की स्थिति में प्रायः एक ही मार्ग दिखाई देता है उसका पालन। सत्ता औचित्य युक्त होती है इसलिए इसका विरोध शासन के लिए ठीक नहीं माना जाता है। इस प्रकार शक्ति में बल निहित होता है और सत्ता में शक्ति बल के पीछे जब सहमति होती है तब वह शक्ति का रूप ले लेता है। और शक्ति के साथ जब औचित्यपूर्णता जुड़ जाती है। तब वह सत्ता का रूप धारणा कर लेती है। जब तक राज्य में व्यवस्था कायम रहती है तब तक जनसामान्य और समाज उसका समर्थन करता रहता है किन्तु बिना बल शक्ति प्रभावी नहीं दिखाई देती है। इस प्रकार सत्ता में शक्ति और शक्ति में बल का समावेश रहता है।

8.7 शक्ति और प्रभाव में अन्तरः

अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि प्रभाव में शक्ति होती है और शक्ति का प्रभाव होता है फिर भी इन दोनों के लक्ष्यों साधनों एवं दिशाओं के मध्य अन्तर पाया जाता है।

प्रो0केटलिन के अनुसार शक्ति सफल नियन्त्रण है इसलिए असफल शक्ति के रूप में स्वीकार नही किया जा सकता है प्रभाव नियंत्रण के रूप में होता है प्रचार भी प्रभाव का एक प्रकार है।

इस तरह निम्न भेद किये जा सकते हैं-

1. शक्ति दमनात्मक,प्रभाव अनुनयात्मक होता है। शक्ति के पीछे कठोर भौतिक बल एवं प्रतिबन्धों का प्रयोग होता है। जिस व्यक्ति या समूह पर शक्तियॉ प्रयोग किया जाता है उसके पास स्वीकार करने के अलावा कोई विकल्प नहीं होता है।

2. प्रभाव अनुनय-विनय तथा मनौवैज्ञानिक होता है व्यक्ति के पास उसे स्वीकार करने या ना करने के विकल्प मौजूद होते है।

3. अधिकतर देखने में आता है कि शक्ति का प्रयोग दूसरें की इच्छा के विरूद्व किया जाता है। जबकि प्रभाव व्यक्ति के इच्छा पर निर्भर करती है।

4. शक्ति अप्रजातन्त्रात्मक होती है जबकि प्रभाव प्रजातन्त्रात्क होता है।

5. शक्ति का प्रयोग निश्चित सीमित और विशिष्ठ रूप में होते है और प्रभाव व्यक्तिगत अमूर्त तथा अस्पष्ठ होता है। अर्थात जब शक्ति का प्रयोग किया जाता है तो उसे हम देख सकते है जबकि प्रभाव प्रायः व्यक्तिगत अमूर्त तथा अस्पष्ठ होता है।

2. वस्तुनिष्ठ प्रश्नः-

(1.) शक्ति की अवधारणा सर्वप्रथम किसने दी।

(a) मैकियावली (b) लासवेल

(c) कार्ल मार्क्स (d) बेकर

(2.) शक्ति के स्रोतों के सम्बन्ध में एक ठीक है-

(a) ज्ञान (b) साधन

(c) निपुणता (d) उपर्युक्त सभी

(3.) जिसकी लाठी उसकी भैंस कौन सी शक्ति का रूप है-

(a) ज्ञान (b) साधन

(c) निपुणता (d) उपर्युक्त सभी

(4.) सत्ता का निम्न आधार है

(a) संविधान (b) बल

(c) अनैतिकता (d) उपरोक्त सभी

8.8 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर राजनीति में शक्ति की भूमिका को देखते है कि प्रायः शक्ति को बल-प्रयोग की धारणा से साथ मिला दिया जाता है। आधुनिक राजनीति-चिन्तन के इतिहास का अध्ययन करे तो ज्ञात होता है कि निकोलो में फियावेली और हॉब्स के समय से लेकर बीसबी सदी के अनुभवमूलक सिदान्तकारों तक शक्ति की अवधारणा ऐसी क्षमता के रूप में की गई है कि एक मनुष्य,दूसरे

मनुष्य से उसकी इच्छा के विरूद्व आज्ञापालन कैसे करा सकता है? यदि हम दूसरों लोगों से आज्ञापालन कराने या कोई कार्य कराने में उनकी सहमति भी प्राप्त कर ले तो शक्ति की भूमिका ओर प्रभावशाली हो जाती है।

सहमति प्राप्त करने का सर्वोत्तम उपाय वैधता है। शासक वर्ग जनमा की सहमति प्राप्त करने के लिए 'विचारधारा' का सहारा लेता है। वह आपने आदेश को इस तरह से पेश करता है जैसे वो सर्व-हित के लिउ किया गया हो जबकि वह अपने स्वार्थ पर टिका होता है। जैसे अरस्तू ने रास-प्रथा को उचित ठहराने के लिए यह तर्क दिया कि की दास में सदगुण की कमी पायी जाती है। अतः वह स्वामी से सदगुण का लाभ ले सकता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रभाव को स्वीकार करने के पश्चात किसी भी क्षेत्र में दमन व शक्ति का कोई मूल्य नहीं होता । राजनीतिज्ञों का तथ्य राजनीतिक प्रभाव को प्राप्त करना होता है और उसे प्राप्त करके ही वह अपनी शक्ति को प्रयुक्त करते है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अनेक असमानताओं के बावजूद भी प्रभाव व शक्ति एक दूसरे के पूरक है ।

8.9 शब्दावली

लोकमत:- सार्वजनिक महत्व के किसी विषय पर जनता की आम राय,विचार या मत जिसका पता लगाया जा सके।

दबासमूहः- ऐसा संगठन जो अपने सदस्यों के किन्हीं संकीर्ण हितों की रक्षा के लिए सरकार को प्रभावित करने का प्रयत्न करता है।

विचारधारात्मक शक्तिः- प्रचलित या प्रस्तावित व्यवस्था को सर्वोत्तम व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत करके या उसे लोगों की दृष्टि में उचित ठहराकर उसके लिए लोगों की सहमति और समर्थन प्राप्त करने की क्षमता।

8.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.b 2. b 3.b 4. a

8.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.डॉ0वी0एल साह व डॉ नीता बोरा, राजनीतिक विज्ञान का परिचय, अंकित प्रकाशन हल्द्वानी।

2.ओम प्रकाश गाबा,राजनीतिक सिद्वान्त की रूपरेखा, मजूर पेपरबैम्स नोएडा।

3.डॉ पुष्पेश पाण्डे व डॉ विजय प्रकाश पन्त, राजनीतिक सिद्वान्त,जगदम्बा पब्लिसिंग कम्पनी नई दिल्ली।

8.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1 .वीरकेश्वर प्रसाद -राजनीति शास्त्र के मूल सिद्धान्त, ज्ञानदा पब्लिकेशन, नई दिल्ली

2 .डी0डी0 राफेल - राजनीतिक दर्शन की समस्यायें, मैकमिलन लन्दन

8.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1- शक्ति से आप क्या समझते है? इसके स्रोतों का वर्णन कीजिए।

2- शक्ति को परिभाषित कीजिए। इसके विभिन्न प्रकारों की विवेचना कीजिए।

इकाई-9 : लोकतंत्र

9.0 प्रस्तावना
9.1 उददेश्य
9.2 लोकतन्त्र
9.3 लोकतन्त्र का अर्थ एवं परिभाषा
9.3.1 लोकतंत्र का व्यापक अर्थ
9.4 लोकतंत्र का दार्शनिक आधार
9.5 लोकतंत्र के प्रकार
9.6 लोकतंत्र की विशेषताएं
9.7 लोकतंत्र के गुण
9.8 लोकतंत्र के दोष
9.9 लोकतंत्र का औचित्य
9.10 सारांश
9.11 शब्दावली
9.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची
9.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.15 निबन्धात्मक प्रश्न

9.0 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाई में हमने न्याय के अर्थ इसकी विशेषता के साथ ही इसके अन्य विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया। साथ ही साथ कानून के अर्थ और विशेषता का अध्ययन किया और देखा कि वर्तमान समय में न्याय की स्थापना हेतु कानून किस प्रकार से महत्वपूर्ण है। इसके साथ ही साथ जॉन राल्स के न्याय सिद्वान्त और उसके विभिन्न रुपों के अध्ययन किया है।

इस इकाई में हम लोकतन्त्र के अर्थ को समझने का प्रयास करेगें। जिससे हम देखेगें कि इसकी विशेषताएं क्या है। इसके दृष्टिकोण कितने है और वर्तमान समय में यह किस प्रकार से सर्वाधिक उपयुक्त शासन प्रणाली हैं।

9.1 उददेश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ सकेगें कि-

1.लोकतन्त्र के अर्थ को समझ सकेंगे।

2.लोकतन्त्र में किस प्रकार शासन जनता के प्रति उत्तरदायी है समझेंगे।

3. लोकतन्त्र की विशेषताओं को जानेंगे।

5.लोकतन्त्र की वर्तमान समय में उपयोगिता है जानेंगे।

9.2 लोकतन्त्र

लोकतन्त्र वर्तमान युग की सबसे लोकप्रिय अवधारणा है। सत्ता और जनता के बीच घनिष्ठ एवं आत्यन्तिक सम्बन्ध स्थापित करने वाली एक प्रणाली के रूप में लोकतन्त्र सभी देशों में एक अनिवार्य, अपरिहार्य एवं नितान्त वांछित आवश्यकता के रूप में है। विश्व के सभी राष्ट्र चाहे उनकी शासन पद्धतियां कुछ भी क्यों न हो अपने को लोकतन्त्र की ही संज्ञान देते हैं। प्रायः प्रत्येक राजनीतिक पद्धति लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों को अपना रही है। सत्ता में जनसहभागिता सुनिश्चित करने वाली यह व्यवस्था सार्वजनिक सप्रंभुता की द्योतक है। आज मानव शक्ति को अन्मुक्त करने के लिए कोई विचारवाद इतना प्रबल नहीं है जितना कि लोकतन्त्र। वास्तव में अब यह विचारवाद न रहकर मानव धर्म बना गया है।

इतिहास के क्रम में द्वितीय विश्वयुद्ध में इटली तथा जर्मनी (धुरी के राष्ट्रों) के पतन के पश्चात् मित्र राष्ट्रों (अमेरिका,ब्रिटेन एवं फ्रांस) की विजय ने लोकतंत्र को पुनः प्रतिष्ठा दी जो कि 1920 से 1940 तक यूरोप, एशिया तथा अमेरिका के कई देशों में अधिनायकता के फलस्वरूप न ही गई थी। विश्व में आज लोकतंत्र काफी सम्मान का पात्र है।

विश्व में चारों ओर लोकतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था का ही बोलबाला है। यह बात उल्लेखनीय है कि 1949 में यूनेस्को ने जो अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की उससे ज्ञात होता है कि विश्व के अधिकांश विद्वान लोकतंत्र को उचित और आदर्श राजनीतिक और सामाजिक संगठन समझते हैं।

प्लेटो से लेकर वर्तमान तक राजनीति विज्ञान में लोकतंत्र (जनतंत्र अथवा प्रजातंत्र) सर्वाधिक चर्चित विषय रहा है। वर्तमान समय को साधरण आदमी का युग माना जाता है, जो लोकतंत्र का एक अत्यन्त उपयोगी अवयव है। लोकतंत्र का एक अत्यनत उपयोगी अवयव है। लोकतंत्र कतिपय शाश्वत वरीयताओं, पर आधारित है, जिनको डॉल, डेविड ईस्टन, हेरॉल्ड लासवेल आदि सभी व्यवहारवादी राजनेताओं ने परम मूल्य के रूप में अपनाया। वे आनुभाविक, सन्दर्भ में इसके लगातार सत्यापन के पक्ष में हैं, किनतु समानताओं के होते हुए भी, पैराक्लीज के एथेन्स तथा टॉमस जकरसन और एण्ड्रयू जैम्सन के प्रजातंत्र से आज का प्रजातंत्र नितानत भिन्न है। इनको एक दूसरे का पर्यायवाची समझना अनुचित है। वर्तमान समय का प्रजातंत्र राज्य प्रधान है। और इसमें अनेक मिश्रित विचारधाराओं काह समावेश है जैसे राष्ट्रीय प्रजातन्त्र, समाजवादी प्रजातन्त्र, जनवादी प्रजातन्त्र, मूलभुत या पचांयत प्रजातन्त्र आदि। प्रजातन्त्र के ऐतिहासिक तथा शास्त्रीय स्वरूप में वर्तमान युग के सन्दर्भ में पर्याप्त परिवर्तन हो जाने से अनेक राजनितिशास्त्रियों ने नये नाम सुझाये है। राबर्ट ए0 डहल उसे लोकप्रिय शासन या बहुतन्त्र कहा है तो लोवेस्टीन ने पोलोक्रेसी कहना उचित समझा है। अन्य विद्वानों ने उसे दलीय तन्त्रं, जनतन्त्र, निर्वाचित बहुमत, लोकतन्त्र आदि नामों से पुकारा है। हिन्दी भाषा मे जनतन्त्र आर्थिक प्रजातन्त्र के लिए तथा लोकतन्त्र राजनितिक प्रजातन्त्र के लिए प्रयोग किया जाता है। इन विभिन्न नामों के प्रयोग से प्रजातन्त्र के स्वरूप में अनिश्चयात्मकता , अस्पष्टता ,श्रान्ति आदि वैचारिक कठिनाइयाँ पैदा हो गयी है। इसके साथ ही पश्चिमी ओर अमेरिकी प्रजातनत्र में यह एक जीवन-प्रणाली बनकर राज्यव्यवस्थाओं में समा गया है। सारटोरी ने इस अवसान के कारण वर्तमान अवस्था को प्रजातन्त्रात्मक श्रान्ति का युग कहा है।

9.3 लोकतन्त्र का अर्थ एवं परिभाषा

आज लोकतन्त्र शासन का श्रेष्ठतम रूप बन गया है। लोकतन्त्र शब्द अंग्रेजी भाषा के डेमोक्रेसी शब्द का हिन्दी रूपान्तर है, जो दो यूनानी शब्दों से मिलकर बना है- डेमोस और क्रेटोस। डेमोस का अर्थ जनता और क्रेटोस का अर्थ है सरकार या शासन। इस प्रकार शब्द की उत्पत्ति के दृष्टिकोण से प्रजातन्त्रसे अभिप्राय है जनता का शासन कुछ लोग इसे लोकतन्त्र, कुछ प्रजातंत्र से और कुछ जनतंत्र के ना मसे पुकारते हैं। साधारणतया लोकतंत्र से अभिप्राय उस शासन व्यवस्था से है जिसमें जनता शासन करती है, वही सरकार का निर्माण करती है, शासन का संचालन करती है तथा सरकार के प्रति उत्तरदायी भी होती है। शासन की सत्ता जनता के हाथों में रहती है, जिसका प्रयोग वह या तो स्वयं करती है या अपने प्रतिनिधियों द्वारा कराती है। महात्मा गाँधी के शब्दों में लोकतंत्र वह कला एवं विज्ञान है। जिसके अन्तर्गत जनसाधारण के विभिन्न वर्गों के भौतिक, आर्थिक एवं आध्यात्मिक संसाधनों को सभी के समान हित की

सिद्धि के लिए नियोजित किया जाता है। इसी संदर्भ में जवाहर लाल नेहरू का दृष्टिकोण है कि लोकतंत्र का आशय सहिश्णुता है, न केवल उन लोगों के प्रति जिनसे सहमति हो वरन् उनके प्रति भी जिनसे असहमति हो।

लोकतंत्र की विद्धानों ने अनेक प्रकार से परिभाषाएं की हैं-

1. प्राचीन युग में यूनानी लोग लोकतंत्र को बहुरक्षकों का शासन मानते थे। प्रसिद्ध ग्रीक दार्शनिक हिरोडोटस के अनुसार- "लोकतंत्र उस शासन व्यवस्था का नाम है, जिसमें राज्य की सर्वोच्च सत्ता सम्पूर्ण जनता के हाथों में निवास करती है।"

2. सीले के शब्दों में "प्रजातंत्र वह शासन है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का एक भाग होता है।"

3. डायसी के अनुसार-" प्रजातंत्र वह शासन का स्वरूप है जिसमें शासन प्रबन्ध करने वाली संस्था समूचे राष्ट्र का एक अप्रेक्षाकृत बड़ा भाग होती है।"

4.लेविस का मत है कि-"वस्तुतः प्रजातंत्र वह सरकार में है, जिसमें सम्पूर्ण राष्ट्र की बहुसंख्यक जनता सप्रभूशक्ति के प्रयोग में हिस्सा लेती है।"

5. हॉल के अनुसार-" प्रजातंत्र राजनीतिक संगठन का वह स्वरूप है जिसमें जनमत का नियत्रण रहता है।"

6. आशीर्वादम के शब्दों में " हमारा विश्वास है कि प्रजातंत्र मानवता के प्रति हमारे उत्साह की व्यावहारिक अभिव्यक्ति है।"

7. ऑस्टिन के अनुसार-" प्रजातंत्र वह शासन है जिसमें शासन की अंतिम शक्ति जनता के अधिकांश भाग को प्राप्त होती है।"

8.अब्राहम लिंकन के अनुसार-" लोकतंत्र जनता का जनता के द्वारा और जनता के लिए (स्थापित) शासन प्रणाली है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय व मान्य परिभाषा अब्राहम लिंकन की है, जिसे उन्होने गोटसबर्ग के भाषण में कहा था। लोकसंत्र की विविध परिभाषाओं का मूल अभिप्राय यह है कि लोकतंत्रीय प्रणाली में शासन या सत्ता का अंतिम सूत्र जनसाधारण के हाथों में रहता है ताकि सार्वजनिक नीति जनता की इच्छा के अनुसार और जनता के हित साधन के उद्देश्य से बनाई जाए और कार्यान्वित की जाय ।

9.3.1 लोकतंत्र का व्यापक अर्थ

लोकतंत्र बहुआयामी अर्थ लिए हुए है। यह मात्र शासन-व्यवस्था अथवा सरकार का एक रूप मात्र नहीं है, अपितु यह समाज और आर्थिक व्यवस्था का भी एक प्रमुख रूप है। हर्नशॉ के शब्दों में "प्रजातंत्र केवल सरकार का स्वरूप नहीं है, बल्कि राज्य और समाज का भी स्वरूप है।"गिडिंग्स ने इस सन्दर्भ में कहा-"प्रजातंत्र केवल शासन का ही नाम नही है, वरन् राज्य का भी एक रूप है तथा समाज

के रूप का भी एक नाम है या फिर तीनों का सम्मिश्रण है।" प्रजातंत्र के नैतिक स्वरूप का वर्णन करते हुए डा0 बेनीप्रसाद ने कहा है कि - "लोकतंत्र जीवन का एक ढंग है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक व्यक्ति के सुख का महत्व उतना ही है जितना अन्य किसी के सुख का साधन मात्र नहीं समझा जा सकता। "मैक्सी ने लोकतंत्र का व्यपक अर्थ करते हुए लिखा है-"बीसवीं सदी में लोकतंत्र से तात्पर्य एक राजनीतिक नियम, शासन की विधि व समाज के ढांचे से ही नहीं है, वरन् यह जीवन के उस मार्ग की खोज है जिसमें मनुष्यों की स्वतंत्र एवं ऐच्छिक बुद्धि के आधार पर उनमें अनुरूपता और एकी करण लाया जा सके।"

इस व्यापक परिप्रेक्ष्य में लोकतंत्र के विभिन्न रूप परिलक्षित होते हैं-

1. लोकतंत्र का राजनीतिक स्वरूप-लोकतंत्र का प्रत्यक्ष सम्बन्ध शासन-प्रणाली से होता है। इस अर्थ में लोकतंत्र सरकार का वह संगठन है जो कि जनता के द्वारा निर्मित नियंन्त्रित एवं संचालित होता है। वास्तव में लोकतंत्र में शासन की सत्ता की बागडोर जनता में ही निहित होती है। जनता अपनी सत्ता का प्रयोग स्वयं या अपने प्रतिनिधियों द्वारा करती है। शासन व्यवस्था पर अंतिम अधिकार एवं निर्णय जनता का ही होता है शासन शासितों का हित समान ही होता है। लोकतंत्र के राजनीतिक स्वरूप का अर्थ यही है कि राज्य के प्रत्येक वयस्क स्त्री एवं पुरूष को मतदान का अधिकार प्राप्त हो। प्रत्येक व्यक्ति को शासन की निंदा करने का अधिकार हो तथा समाचार पत्र एवं प्रेस की भूमिका स्वतंत्र एवं निष्पक्ष हो। जनता व सत्ता के मध्य सम्बन्ध समन्वय पूर्ण होने चाहिए।

2.लोकतंत्र का सामाजिक स्वरूप- लोकतांत्रिक समाज समता में फलता एवं फूलता है। समानता की भावना ही लाकतांत्रिक समाज की एक विशिष्ट विशेषता होती है। यह सिद्धान्त जन्म,जाति,वर्ण,चरित्र तथा योग्यता इत्यादि के भेदों से परे प्रत्येक मनुष्य के समान नैतिक गुण और आत्मिक गौरव पर बल देता हुआ समाज में सामाजिक तथा सांस्कृतिक समानता की स्थापना करता है। यह समाज के प्रत्येक सदस्य को अपने व्यक्तित्व के विकास अवसर उपलब्ध कराता है। इस प्रकार, जिस समाज में विचारों,अधिकारों,भावानाओं और आदेशों की समानता होती है। उसे ही लोकतांत्रिक समाज कहा जा सकता है।

क्रोजियर के कथनानुसार "मनुष्य की भौतिक एवं सामाजिक दशाओं की समानता लोकतंत्र का सार है। " आर्शीवार्दम के शब्दों में- "प्रजातांन्त्रिक समाज वह है, जिसमें समानता तथा भ्रातृत्व की भावना सम्भवता वर्तमान रहती है। " अतः सामाजिक दृष्टि से लोकतंत्र का अर्थ सामाजिक समानता के रूप में जाना जाता है।

3. लोकतंत्र का नैतिक स्वरूप- लोकतंत्र का स्वरूप नैतिक भी है। यह स्वरूप एक आदर्श एवं आध्यात्मिक जीवन की कल्पना करता है, जिसके अन्तर्गत घृणा, स्वार्थ, द्वेष, ईर्ष्या इत्यादि बुरी प्रवृत्तियों का नाम नही रहना चाहिए। मनुष्यों में प्रेम, देश-प्रेम, सहयोग, भ्रातृत्व इत्यादि गुणों की वृद्धि करके नागरिकों में नैतिकता का विकास होना चाहिए। लोकतंत्र की सफलता के लिए राष्ट्रीय एकता तथा लोगों में उच्च नैतक मूल्यों के प्रति निष्ठा नितान्त जरूरी है। प्रजातंत्र के नैतिक स्वरूप का वर्णन करते हुए जैकरसन ने लिखा है "प्रजातंत्र शासन इस विश्वास पर आधारित है कि अधिकांश जनता स्वशासन की योग्यता रखती है तथा साधारण व्यक्ति के अन्दर भी इतनी योग्यता होती है कि वह ऐसे शासकों का निर्वाचन करे, जो सामाजिक हित को दृष्टि में रखकर कार्य करे।

4. लोकतंत्र का आर्थिक स्वरूप-आर्थिक स्वरूप से आशय है आर्थिक समानता से है। आर्थिक स्वतंत्रता और समानता ही वास्वविक प्रजातंत्र का आधार मानी जाती है। भूखे व्यक्ति के लिए लोकतंत्र का कोई महत्व नहीं हो सकता। इस कारण आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना आवश्यक है। आर्थिक लोकतंत्र से आशय है ऐसी व्यवस्था से होता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपनी भौतिक सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उचित साधन उपलब्ध हो और जहाँ पर किसी का शोषण न किया जाये। यह कहा भी जाता है कि आर्थिक समानता के अभाव में राजनीतिक लोकंत्र सामान्य मनुष्यों को अपनी इच्छाओं की पूर्णता में सहायता नहीं दे सकता। राजनीतिक शक्ति आर्थिक शक्ति की दासी है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि समाज में धन का वितरण इस तरह होना चाहिए कि

अधिक से अधिक व्यक्ति उसका उपभोग कर सकें और सभी लोगों को भोजन, वस्त्र, शिक्षा आदि की पर्याप्त सुविधाएं प्राप्त हो। सच्चे अर्थों में लोकतंत्र की स्थापना तभी सम्भव है।

5. जीवन का एक रूप-लोकतंत्र जीवन का एक रूप भी है। यह जीवन के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण अपनाता है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति का सम्मान होता है तथा उसकी आन्तरिक नैतिक एवं आध्यात्मिक क्षमता का विकास किया जाता है। जिससे व्यक्ति की गरिमा में बढ़ोतरी होती है और उसका नैतिक स्तर ऊपर उठता है।

उर्पयुक्त विभिन्न व्यापक दृष्टिकोणों से यह पूर्णतः स्पष्ट है कि लोकतंत्र एक ऐसी शासन प्रणाली और सामाजिक व्यवस्था का सिद्वान्त है जिसकी एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति होती है और जिसका एक आर्थिक आधार होता है और जिसमें सामाजिक, राजनीतिक और दैनिक व्यवहार के सारे सांस्कृतिक मापदंड निहित होते हैं। संक्षेप में लोकतंत्र एक विशेष प्रकार का शासन है सामाजिक व्यवस्था का एक सिद्वान्त है, एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति है। इसका सही अर्थ अपने कर्त्तव्यों का उचित निर्वहन है।

9.4 लोकतंत्र का दार्शनिक आधार

लोकतंत्र व्यक्ति को एक इकाई के रूप में मानते हुए, उसकी गरिमा को महत्व देता है। लोकतंत्र के मूल्यों में स्वतंत्रता व अधिकार विद्यमान होते हैं। लोकतान्त्रिक समाज में जाति, लिंग, व धर्म के आधार पर कोई भेदभाव नही किया जाता है और समाज में किसी को कोई विशेषाधिकार प्राप्त नही होता है। लास्की, स्मिथ , ब्राइस जैसे विचारक लोकतंत्र को जीवन शैली के रूप में देखते हैं। इसका मतलब दूसरों के प्रति सहिष्णु होना है। मिल के अनुसार ' दूसरों के विचारों का सम्मान करना ही लोकतान्त्रिक जीवन शैली है।

लोकतंत्र के तहत सीमित व संवैधानिक शासन होता है, इस शासन में उत्तरदायित्व व सहमती भी शामिल होती है। नियमित चुनाव लोकतंत्र में अनिवार्य तत्व है।

9.5 लोकतंत्र के प्रकार

1 प्रत्यक्ष लोकतंत्र – प्रत्यक्ष लोकतंत्र में जनता प्रत्यक्ष रूप से एकत्र होकर शासन के कार्यों व निर्णयों का संपादन करती है। जनता राज्य के शासन व्यवस्था के सम्बन्ध में निर्णय लेती है। इस तरह का लोकतंत्र 5 वीं शताब्दी में यूनान के एथेंस में होता था। वर्त्तमान समय में स्विट्जर्लैंड के कुछ राज्यों (cantons) में प्रत्यक्ष लोकतंत्र देखा जा सकता हैं। आज के समय में विशाल जनसँख्या वाले देशों में यह शासन व्यवस्था संभव नहीं है।

2 प्रतिनिधियात्मक लोकतंत्र- इस लोकतंत्र में प्रतिनिधियों द्वारा शासन किया जाता है जो व्यस्क मताधिकार के द्वारा चुने गये होते हैं। वर्तमान समय में भारत, फ्रांस, जर्मनी , अमेरिका, इंग्लेंड आदि देशों में प्रतिनिधि लोकतंत्र है।

9.6 लोकतंत्र की विशेषताए

1. लोकतंत्र में मतदाताओं द्वारा प्रतिनिधियों को चुनने के लिए नियमित चुनाव करवाए जाते हैं।

2. लोकतंत्र समानता के सिध्दांत पर आधारित है।
3. बुद्धिमान और प्रबुद्ध नागरिक लोकतंत्र की आवश्यकता है। क्यूंकि सरकार का चयन , उस पर नियंत्रण आलोचना और उसे हटाना सभी कार्य नागरिकों द्वारा होने होते हैं। यह सभी कम तभी अच्छी से संपन्न हो सकते है जब लोग पढ़े लिखे व समझदार हों।
4. अच्छा नेता लोकतंत्र के लिए उसी तरह जरुरी है जैसे मनुष्य के लिए दिमाग। सरकार की गुणवत्ता नेता के ईमानदार, मजबूत व शक्तिशाली होने पर ही बढती है।
5. एक स्वतंत्र, भयमुक्त और स्पष्ट प्रेस लोकतंत्र को मजबूत करती है।
6. शक्तिशाली सत्ताधारी पार्टी के साथ-साथ एक सशक्त विपक्ष भी लोकतंत्र के लिए आवश्यक है। विपक्ष सरकार को उतरदायी बनता है और तानाशाही को नियंत्रित करता है।
7. स्थानीय स्वशासन लोकतंत्र के लिए नीवं का कम करता है।
8. संवैधानिक सरकार लोकतंत्र के लिए जरुरी है।
9. स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका भी लोकतंत्र के लिए आवश्यक है।
10. लोकतंत्र की प्रस्तुति में सबसे महत्वपुर तत्व लोगों की भावना है।
11. लोकतंत्र में कानून का शासन (rule of law) चलता है।
12. लोकतंत्र में जनता को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्राप्त होती है।

9.7 लोकतंत्र के गुण

1.लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति को महत्त्व प्रदान किया जाता है।
2.लोकतंत्र समानता की अवधारणा से जुडा होता है।
3.लोकतंत्र राजनीतिक शिक्षा प्रदान करता है और लोगों में देशभक्ति जगाता है।
4.लोकतंत्र व्यक्ति की गरिमा का सम्मान करता है।
5.लोकतंत्र में आसानी से शान्तिपूर्ण तरीके से सरकारें बदल जाती है।
6.यह लोकतंत्र में ही संभव है कि सामान्य सा व्यक्ति भी शासक बन सकता है।

9.8 लोकतंत्र के दोष

1. लोकतंत्र बहुत खर्चीली होता है, जिसमें समय व धन का काफी अपव्यय होता है ।
2. लोकतंत्र एक प्रकार से भीड का शासन है।
3. लोकतंत्र में दलीय व्यवस्था के दुष्प्रभाव रहते है।
4. लोकतंत्र में अयोग्य व्यक्ति भी शासक बन सकता है।
5. जनता के शासन के स्थान पर कुछ लोगों का शासन होता है।

9.9 लोकतंत्र का औचित्य

निरंकुशता की अस्वीकृति- राज्य में सत्ता का दुरूपयोग हमेशा ही एक चुनौती बना रहता है। जब सत्ता की पूरी बागडोर एक व्यक्ति के हाथ आ जाये तो निरंकुशता जन्म लेती है।लार्ड ऐक्टन के अनुसार "सत्ता भ्रष्ट करती है और पूर्ण सत्ता पूर्णतः भ्रष्ट करती है"। एक निरंकुश सत्ताधारी जनसाधारण के हित में नहीं, अपनी शक्तियों का उपयोग अपने स्वार्थ के लिए करता है और सत्ता के दुरूपयोग से जनसाधारण में भय अत्पन करता है. लोकतंत्र में सत्ता का दुरूपयोग और निरंकुशता से बचने के लिए, सत्ताधारी पर जनता का नियंत्रण और अंकुश रहता है. लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुसार जनमत को सर्वोच्च माना जाता है और सत्ताधारी की जनसाधारण के प्रति जवाबदेही उसका एक अभिन्न अंग है. निरंकुशता से बचने के लिए लोकतंत्र एक सार्थक उपाय के तौर पर उभरता है.

जनसाधारण की भागीदारी- एक कुशल शासन व्यवस्था वही है जो जनसाधारण के सहयोग से निर्णय ले। अन्य निर्णय-निर्माण के तरीकों की तुलना में लोकतांत्रिक प्रक्रिया नागरिकों के मुद्दों से भली भांति अवगत होती है और उनके हितों के प्रति जानकारीपूर्ण होता है। जन भागीदारी से निर्णय निर्मल और भी सुदृढ़ होता है। इस प्रकार जनता का विश्वास उनके प्रतिनिधियों और शासन प्रणाली पर बना रहता है। जॉन डेवी का तर्क है कि लोकतंत्र में परामर्श और चर्चा शामिल हैं जो सामाजिक जरूरतों और समस्याओं को उजागर करते हैं। समानता का अधिकार यह सुनिश्चित करता है की जनसाधारण बिना किसी भेदभाव के अपना सहयोग परस्पर देता रहे। इससे नागरिक एक कुशल और संवेदनशील प्रशासन में अपना योगदान देने के लिए तत्पर रहते हैं।

जनमत और जनशिक्षा- स्वतंत्रता, समानता व आत्मसम्मान जैसे लोकतांत्रिक आदर्श स्वतंत्र चर्चा की अनुमति देती है। नागरिक यह जानकर भी सरकार की आलोचना कर सकते हैं कि अपने प्रतिनिधियों को चुनने की शक्ति उनके अपने हाथों में है। मुक्त सार्वजनिक चर्चा से समाज के विभिन्न वर्गों को विचार-विमर्श प्रक्रिया में भाग लेने की अनुमति मिलती है। अल्पसंख्यकों के भी अधिकारों को संग्रक्षित किया जा सकता है। लोकतांत्रिक सिद्धांत जैसे मत का अधिकार, अभिव्यक्ति की आज़ादी से जागरूक और सक्रिय नागरिक बनते हैं जो बेहतर जनमत बनाने में सहायक होता है। एक स्वस्थ लोकतांत्रिक देश में इसी प्रकार जनशिक्षा का विकास होता है। ऐसे नागरिक एक दुसरे के विचारों के प्रति उदार व सहनशील बनते हैं. जनसाधारण का राष्ट्रीय चरित्र नैतिक रूप से और मजबूत होता है।

भ्रातृत्व व देशभक्ति-भ्रत्रित्व लोकतंत्र का एक अहम् हिस्सा है जो स्वतंत्र और समान समाज में और अधिक मजबूत होता है. जब सभी नागरिकों को अहसास होगा की उनकी राय पर गौर किया जाता है, देश के विकास में उनकी भी ज़िम्मेदारी है, तब देश प्रेम का संचरण होता है। एक दुसरे के प्रति सम्मान व सद्भावना भाव से सबकी उन्नति का विचार उत्पन होगा। लोकतंत्र में व्यक्तियों को भरोसा होता है की शासन तक उनकी बात पहुँचाने का अवसर मिलता है और वह जनमत को संगठित करके शासन के दृष्टिकोण को प्रभावित कर सकते हैं। इस से देशभक्ति और जनकल्याण की भावना का विस्तार होता है और विद्रोह की सम्भावना भी कम हो जाती है.

अभ्यास प्रश्न-

1.यूनानी शब्द डेमोस का अर्थ क्या है?

2.लोकतन्त्र जनता का जनता के द्वारा और जनता के लिए स्थापित शाषन हैं।

3.लोकतन्त्र जीवन जीने का ढंग हैं। किसने कहा हैं?

4. लोकतंत्र के प्रकार कितने हैं?

5.यूनान के किस नगर में प्रत्यक्ष लोकतंत्र विद्यमान था?

9.10 विकासशील देशों में लोकतंत्र की समस्याएं

दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात ऐशिया और अफ्रीका में अनेक देश औपनिवेशिक शासन की जकड़न से बाहर निकले। स्वतंत्र हुए देशों में अधिकतर ने लोकतांत्रिक शासन पद्धति को अपनाया। कई देशों को लोकतंत्र की स्थापना करने में अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ा और कुछ देश तो सैनिक शासन या तानाशाही की राह पर चल पड़े और कुछ देशों ने एकदलीक शासन अपनाया।

विकासशील देशों के सामने कुद समस्याऐं समय-समय पर उत्पन्न होती रहती है जो विकासशील देशों के लोकतंत्र को प्रभावित करती है। इनमें से एक, जातीय समूहों का सामाजिक,आर्थिक और राजनीतिक विकास भिन्न-भिन्न स्तर तक हुआ है। जातीय विविधता की झलक रानीतिक संगठन में साफ दिखायी पड़ती है। एक बात तो स्पष्ट तौर पर देखी जाती है कि जातीय समूहों को प्रभावशाली समूह के हाथों जो भेदभाव, भले ही काल्पनिक हो या वास्तविक झेलना पड़ता है। और इससे लोकतंत्र में इनकी आस्था कमजोर हो जाती है।

दूसरे अधिकांश देश आर्थिक रूप से बहुत पिछड़े हैं जिसके कारण सरकार से विकास की अपेक्षा ज्यादा रहती है। कई देशों में एक दलीय व्यवस्था है या कम से कम एक दल का प्रभुत्व है। प्रभावशाली दल, स्वाधीनता संघर्ष में कुर्बानियों या प्रभावशाली नेतृत्व के सहारे आधुनिकता और विकास के नाम पर अपना औचित्य सिद्ध करता है। तीसरे, इन देशों में उदारवादी लोकतंत्रों की तुलना में, आर्थिक और सामाजिक गतिविधियों में शासन का हस्तक्षेप बहुत अधिक होता है। अर्थव्यवस्था के नियमन में शासन की अपेक्षाकृत अधिक दखलंदाजी आर्थिक विसंगतियों को दूर करने के लिए जरूरी है। ये विसंगतियां औपनिवेशिक शासन की देन है।

9.11 सारांश

इस इकाई में हमने लोकतंत्र के अर्थ ,विशेषताएं इसके ओचित्य का अध्ययन किया है . वर्तमान युग को लोकतंत्र का युग माना जाता है। किन्तु आज लोकतंत्र चारों ओर से चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। स्पष्ट होता है कि जो

परिस्थितियां लोकतंत्रात्मक प्रणाली के मजबूती में सहायक है वो नहीं मिल पाने के कारण लोकतंत्र के मूल्यों सुरक्षित रखने और उन्हें व्यवहार में प्रत्येक मनुष्य के लिए अर्थपूर्ण बनाने में अनेक कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। अतः लोकतांत्रिक समाज में इन जटिलताओं के कारण लोकतंत्र की सफलता की आवश्यक शर्तों को सर्वमान्य ढंग से लागू करना सम्भव नहीं।

9.12 शब्दावली

डेमोस – जनता

प्रतिनिधियात्मक लोकतंत्र- इस लोकतंत्र में प्रतिनिधियों द्वारा शासन किया जाता है जो व्यस्क मताधिकार के द्वारा चुने गये होते हैं।

कानून का शासन – इसके अंतर्गत राज्य का प्रत्येक व्यक्ति विधि के अधीन है और कानून का पालन करगा।

9.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. जनता 2 . अब्राहम लिंकन 3 . बेनी प्रसाद 6. दो 7. एथेंस

9.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.लास्की -----द प्राब्लम्स आफ सावरिन्टी
2.हेसिये ----पॉलिटिकल प्लूरेलिज्म
3. ज्ञान सिंह सन्धु -- राजनीति के सिद्धान्त, ग्रन्थ विकास, जयपुर
4.डॉ0वी0एल साह व डॉ नीता बोरा, राजनीतिक विज्ञान का परिचय, अंकित प्रकाशन हल्द्वानी।
5.ओम प्रकाश गाबा,राजनीतिक सिद्वान्त की रूपरेखा, मजूर पे परबैम्स नोएडा।
6.डॉ पुष्पेश पाण्डे व डॉ विजय प्रकाश पन्त, राजनीतिक सिद्वान्त,जगदम्बा पब्लिसिंग कम्पनी नई दिल्ली।
7.तिवारी, बी.के. (2005) राजनीती विज्ञान के सिद्धांत, न्यू रॉयल बुक कंपनी

9.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1 . राजनीति के सिद्धान्त, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय
2- जे0सी0जौहरी एवं सीमा चौधरी ----आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त , स्टर्लिंग पब्लिकेशन प्रा0 लि0 नयी दिल्ली

9.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1.लोकतंत्र से आप क्या समझते हैं ? लोकतंत्र की विशेषताओं और ओचित्य पर प्रकाश डालिए।